उस समय उस अर्जुनकुमारने ऐसा ही भयंकर युद्ध किया था ॥ ४५-४६ ॥

सैन्यं प्रहतमप्रीतं भग्नं च परिपालितम् ।
चतुर्विधं सैन्यमसौ जग्राह स्वमिवाहवे ॥ ४७ ॥

उसने अर्जुनद्वारा सुरक्षित उस चतुरंगिणी सेनाको युद्ध-भूमिमें नष्ट-भ्रष्ट करके कष्टमें डाल दिया और फिर अपनी सेनाकी तरह उसपर अधिकार कर लिया ॥ ४७ ॥

बाणैर्विमोहितान् वीरान् स्वपुरे हर्षितोऽनयत् ।
नीयन्ते गजशालासु गजाः पार्थस्य वाजिनः ॥ ४८ ॥
मन्दुरासु च पार्थस्य पुत्रेण च बलीयसा ।
रथास्तु वस्तुजातं तत् पुरमध्ये गतं नृप ।
प्रद्युम्नप्रमुखा वीरा मोहिताः शरवृष्टिभिः ॥ ४९ ॥

वह बाणोंसे विमोहित हुए वीरोंको हर्षपूर्वक अपने नगरमें ले गया । राजन् ! उस बलवान् अर्जुनकुमारने अर्जुनके गज-राजोंको अपनी गजशालामें और घोड़ोंको घुड़सालमें भेजवा दिया तथा रथ और दूसरी बहुत-सी सामग्रियाँ (उसकी आज्ञा-से) नगरमें पहुँचा दी गयीं; क्योंकि उस समय प्रद्युम्न आदि प्रमुख वीर बाणवृष्टिसे मूर्च्छित पड़े थे ॥ ४८-४९ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि बभ्रुवाहनयुद्धवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें बभ्रुवाहनके युद्धका वर्णननामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—लंकाविजयके पश्चात् भगवान् रामका अयोध्यामें प्रवेश, उनका स्वागत और सबसे मिलन तथा रामराज्यका वर्णन

जैमिनिरुवाच

संग्रामस्त्वभवद् राजन् बभ्रुवाहनपार्थयोः ।
यथा कुशस्य रामस्य वाजिमेधहये धृते ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजा जनमेजय ! जैसे पहले अश्वमेधके घोड़ेके पकड़ लिये जानेपर भगवान् रामचन्द्र और उनके पुत्र कुशमें संग्राम हुआ था, उसी तरह इस समय बभ्रुवाहन और अर्जुनका युद्ध हुआ ॥ १ ॥

जनमेजय उवाच

कथं रामः कुशं पुत्रं शमयच्छरवृष्टिभिः ।
कथं च तेन पुत्रेण जितो रामो रणाजिरे ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—मुने ! भगवान् रामने किस प्रकार बाणवर्षा करके अपने पुत्र कुशको शान्त किया था और फिर रणाङ्गणमें वे किस तरह अपने उस पुत्रसे पराजित हुए थे ? ॥ २ ॥

रामो न वेत्ति स्वं सूनुमेतन्मे विस्तराद् वद ।
यस्माद् रामकथा विप्र सर्वपातकनाशिनी ॥ ३ ॥

ब्रह्मन् ! क्या श्रीरामचन्द्रजी अपने उस पुत्रको नहीं जानते थे ? आप इसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि भगवान् रामकी कथा समस्त पापोंका विनाश करनेवाली है ॥ ३ ॥

जैमिनिरुवाच

शृणु राजन् महाबाहो रामस्य चरितं महत् ।
विस्तरेण यथा पूर्वं वदतो मे निशामय ॥ ४ ॥

जैमिनिजीने कहा—राजन् ! महाबाहु भगवान् श्री-रामके महत्त्वपूर्ण चरित्रको सुनो । पूर्वकालमें यह घटना जिस प्रकार घटित हुई थी, उसे उसी रूपमें मैं विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे मेरे मुखसे श्रवण करो ॥ ४ ॥

रामस्तं रावणं हत्वा कुम्भकर्णं महाबलम् ।
तथान्यान् राक्षसान् घोरान् मेघनादमुखान् रणे ॥ ५ ॥
सीतामग्निमुखाच्छुद्धामादाय स्वपुरं ययौ ।
बिभीषणेन वीरेण लक्ष्मणेन महात्मना ॥ ६ ॥
तथा हनूमत्प्रमुखैर्वानरैः परिवारितः ।

श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें रावण, महाबली कुम्भकर्ण तथा मेघनाद आदि अन्य भयंकर राक्षसोंका वध करके और अग्नि-द्वारा शुद्ध की हुई सीताजीको साथ लेकर अपने नगरको चले। उस समय उनके साथ वीरवर बिभीषण, महात्मा लक्ष्मण तथा हनुमान् आदि प्रमुख वानर भी थे ॥ ५-६½ ॥

अयोध्यां प्रविवेशाथ वसिष्ठप्रमुखा द्विजाः ॥ ७ ॥
पठन्तो मङ्गलं सूक्तं रामसम्मुखमाययुः ।

जब वे अयोध्यामें प्रवेश करने लगे, उस समय महर्षि वसिष्ठ आदि प्रमुख द्विजगण मङ्गलसूक्तका पाठ करते हुए स्वागतके लिये भगवान् श्रीरामके सम्मुख आये ॥ ७½ ॥

वसिष्ठप्रमुखान् दृष्ट्वा ततो दाशरथी रथात् ॥ ८ ॥
अवातरत् क्षणाद् रामो नमश्चक्रे च तान् मुनीन् ।
पश्चाच्च लक्ष्मणः सीता नमस्कारं प्रचक्रतुः ॥ ९ ॥

तब उन वसिष्ठ आदि प्रधान ब्राह्मणोंको देखते ही दशरथ-नन्दन श्रीराम तुरंत अपने रथ (पुष्पकविमान) से उतर पड़े। फिर उन्होंने उन मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् लक्ष्मण और सीताने भी उन ब्राह्मणोंको मस्तक झुकाया ॥ ८-९ ॥

ततः स तैर्नियुक्तोऽसौ रामो राजीवलोचनः ।
कैकेयीं च सुमित्रां च भरतं लक्ष्मणं तथा ॥ १० ॥
शत्रुघ्नं च पुरस्कृत्य ववन्दे रघुवंशजः ।
कौसल्यां जननीं पश्चान्नमस्कर्तुमगाच्च सः ॥ ११ ॥

तदनन्तर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञासे कमलनयन रघुवंशी भगवान् रामने भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको आगे करके माता कैकेयी और सुमित्राके चरणोंमें अभिवादन किया। इसके बाद वे अपनी माता कौसल्याको प्रणाम करनेके लिये गये १०-११

मलिनां पङ्कदिग्धाङ्गीं रामदर्शनलालसाम् ।
भर्तृदुःखपरिक्लिन्नां हर्षितां रामदर्शनात् ॥ १२ ॥

उस समय कौसल्याजी पतिके मरणजन्य दुःखसे अत्यन्त संतप्त थीं। उनके शरीरपर मैल जम गयी थी, जिससे उनका स्वरूप मलिन हो गया था। उनके हृदयमें रामदर्शनकी लालसा भरी हुई थी और वे श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनसे हर्षित हो रही थीं ॥ १२ ॥

दृष्ट्वा पद्मपलाशाक्षं रामं हर्षसमन्विता ।
परिरभ्य चिरं तस्थौ धनं प्राप्याधनो यथा ॥ १३ ॥

वे कमल-पत्रके-से नेत्रवाले रामको देखकर हर्षसे परिपूर्ण हो गयीं और उन्हें छातीसे लगाकर बहुत देरतक खड़ी रह गयीं, मानो किसी निर्धन पुरुषको धनकी प्राप्ति हो गयी हो ॥ १३ ॥

स्नापयन्ती दृगम्भोभिः स्नेहेन बहुना सुतम् ।
विशेषेण जटावन्तं चिरं स्नानमवर्तयत् ॥ १४ ॥

वे अपने पुत्रको अत्यन्त प्रेमपूर्वक आँसुओंसे नहलाने लगीं। विशेषकर श्रीरामचन्द्रजीको जटाधारी देखकर वे चिर-कालतक उन्हें स्नान कराती रहीं (उनके ऊपर अश्रुवर्षा करती रहीं) ॥ १४ ॥

ततो रामं कराग्रेण पस्पर्श जननी तथा ।
राक्षसास्त्रक्षतं दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं शुभम् ॥ १५ ॥

तदनन्तर जब माता कौसल्या श्रीरामचन्द्रजीके शरीरपर हाथ फेरने लगीं, उस समय उसे राक्षसोंके अस्त्रोंसे क्षत-विक्षत देखकर यह शुभ वचन बोलीं—॥ १५ ॥

वसिष्ठप्रमुखा रामं वदन्ति किमिदं वचः ।
अच्छेद्योऽयमभेद्योऽयमक्लेद्योऽयं सुतस्तव ॥ १६ ॥
तदिदानीं वृथा मन्ये बाणैर्भिन्नोऽसि राघव ।
अथवा शिवभक्तं त्वामाहुः केचिन्मुनीश्वराः ॥ १७ ॥
तस्माद् दत्तं त्वया स्थानं बाणानामिति मे मतिः ।

'तब वसिष्ठ आदि महर्षि क्यों कहते हैं कि इन तुम्हारे पुत्र श्रीरामको शस्त्र काट नहीं सकते, विदीर्ण नहीं कर सकते और जल उन्हें गीला नहीं कर सकता। रघुनन्दन! तुम तो बाणोंसे घायल हो चुके हो। यह देखकर मुझे इस समय उन मुनियोंका कथन व्यर्थ प्रतीत हो रहा है। अथवा कोई-कोई मुनीश्वर तुम्हें शिवभक्त भी बतलाते हैं, इस कारण तुमने (शिवभक्त रावणके) उन बाणोंको अपने शरीरमें स्थान दे रखा है। ऐसी मेरी मान्यता है' ॥ १६-१७½ ॥

स्पृष्ट्वा तदङ्गं कौसल्या स्वपाणिभ्यां दयावती ॥ १८ ॥
आनन्दं परमं प्राप्ता ज्ञानं लब्ध्वेव ब्राह्मणः ।
तत्करस्पर्शतो रामो मुक्तो दुःखैः सुदारुणैः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् जैसे ज्ञानको पाकर ब्राह्मण प्रसन्न होता है, उसी तरह दयालु स्वभाववाली कौसल्या अपने दोनों हाथोंसे श्रीरामजीके शरीरका स्पर्श करके परमानन्दमें निमग्न हो गयीं और श्रीराम भी माताके हाथोंका स्पर्श होनेसे अपने अत्यन्त घोर कष्टोंको भूल गये ॥ १८-१९ ॥

ततो रामो महाबाहुर्जननीं शिरसा च ताम् ।
नमस्कृत्य ततो बन्धून् पप्रच्छ कुशलं च तान् ॥ २० ॥

उस समय महाबाहु श्रीरामने माता कौसल्याको सिर झुका-कर प्रणाम किया और फिर वे उन बन्धुओंसे उनकी कुशल पूछने लगे ॥ २० ॥

हर्षितो भ्रातृभिः सर्वैरयोध्यायामुवास सः ।
पालयन् पृथिवीं सर्वां सशैलवनकाननाम् ॥ २१ ॥

तत्पश्चात् श्रीराम पर्वत, वन और काननोंसहित इस सारी पृथ्वीपर शासन करते हुए सभी भाइयोंके साथ हर्षपूर्वक अयोध्यामें निवास करने लगे ॥ २१ ॥

प्रजाः स्वस्था ह्यवर्तन्त विप्रा वेदपरायणाः ।
आतृप्तेश्च पयः पीत्वा वत्सा यत्रोपरेमिरे ॥ २२ ॥

उस रामराज्यमें प्रजाएँ स्वस्थ थीं, ब्राह्मण वेदाध्ययनमें तत्पर रहते थे और बछड़े तृप्तिपर्यन्त दूध पीकर ही स्तनोंसे अलग होते थे ॥ २२ ॥

गोपाला दुदुहुस्तत्र घटोध्नीर्गाः शुभास्तदा ।
फलन्ति सततं वृक्षा लताः पुष्प्यन्ति सर्वदा ॥ २३ ॥

उस समय ग्वाले घड़ेके-से थनवाली सुन्दर गौओंको दुहते थे, वृक्षोंमें सदा फल लगते थे और लताएँ सर्वदा फूलती रहती थीं ॥ २३ ॥

औषध्यः फलवत्यस्ता दुष्कालादेर्विनाशकाः ।
सरयूतीरमासाद्य यज्ञान् कुर्वन्ति याजकाः ॥ २४ ॥

ओषधियाँ फलवती होती थीं, वे दुष्काल आदि उपद्रवोंका विनाश करनेवाली थीं । याजकलोग सरयू-तटपर आकर यज्ञ किया करते थे ॥ २४ ॥

यूपस्तम्भाः समन्ताच्च पशुभिरुपशोभिताः ।
दृश्यन्ते स्थाणुतां प्राप्ता अध्वरान्ते समुच्छ्रिताः ॥२५॥

उन यज्ञोंमें चारों ओर यूपस्तम्भ पशुओंसे सुशोभित रहते थे और यज्ञके समाप्त होनेपर वे ऊँचे-ऊँचे ठूँठके रूपमें दीख पड़ते थे ॥ २५ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं स रामः सुखितः पृथिव्यां
त्रिभिश्च तैर्भ्रातृभिरग्निकल्पैः ।
रराज राजीवपलाशनेत्रो
गुणैस्त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोभिः ॥ २६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार कमलदल-सदृश नेत्रवाले श्रीराम सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंके समान तथा अग्नितुल्य पराक्रमी अपने तीनों भाइयोंके साथ सुखपूर्वक पृथ्वीपर सुशोभित हुए थे ॥ २६ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने अयोध्याप्रवेशो नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके अन्तर्गत श्रीराम आदिका अयोध्यामें प्रवेश नामक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान-श्रीरामका स्वप्न, सीताका पुंसवन-संस्कार, गुप्तचरका अर्धरात्रिके समय श्रीरामके पास आकर सीताके विषयमें रजककी बात सुनाना, श्रीरामका चिन्तित होना और सीता-परित्यागके लिये भाइयोंको बुलवाना

जैमिनिरुवाच

दशवर्षसहस्राणि राज्यं चक्रे स राघवः ।
प्रजां न लेभे सीतायां पालयन् पूर्वजस्थितिम् ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! रघुनाथजीको पूर्वजोंकी मर्यादाका पालन करते हुए राज्य करते दस हजार वर्ष बीत गये, परंतु तबतक उन्हें सीताजीके गर्भसे किसी संतानकी प्राप्ति नहीं हुई ॥ १ ॥

ततः कालेन महता गर्भमाधत्त मारिष ।
नक्षत्रे वैष्णवे तुर्ये पादे तद्देवताभिधे ॥ २ ॥
चरे लग्ने प्रवृत्ते च मातुर्देशान्तरप्रदे ।
ततः स चतुरो मासान् रेमे पत्न्या सहेश्वरः ॥ ३ ॥

आर्य ! तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होनेके पश्चात् जब वैष्णव नक्षत्र श्रवणका विष्णुदेवताका चौथा चरण बीत रहा था और माताको देशान्तर भेज देनेवाले चरलग्नकी प्रवृत्ति हुई थी, ऐसे समयमें सीताजीने गर्भ धारण किया । तत्पश्चात् ऐश्वर्यशाली श्रीराम चार मास तक अपनी पत्नीके साथ आनन्दपूर्वक रहे ॥ २-३ ॥

प्राप्ते तु पञ्चमे मासे रामः स्वप्ने ददर्श सः ।
सीतां भागीरथीतीरे विलपन्तीमनाथवत् ॥

लक्ष्मणेन परित्यक्तामित्यहो विस्मयान्वितः ।
प्रातः कृताह्निको रामो वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ ५ ॥

जब पाँचवाँ महीना आया, तब एक दिन श्रीरामने स्वप्नमें देखा कि लक्ष्मणने सीताको गङ्गातटपर छोड़ दिया है और वह अनाथकी भाँति विलाप कर रही है। ऐसा स्वप्न देखकर श्रीराम बड़े विस्मयमें पड़ गये और प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके बाद वसिष्ठजीसे बोले ॥ ४-५ ॥

राम उवाच

स्वप्ने पश्यामि रुदतीं सीतां भागीरथीतटे ।
तद्गर्भविघ्नशान्त्यर्थं तस्याः पुंसवनक्रिया ॥ ६ ॥
शीघ्रमादिश्यतां ब्रह्मन् पुन्नक्षत्रे दिने शुभे ।
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा वसिष्ठो मुनिपुङ्गवः ॥ ७ ॥

श्रीरामने कहा—ब्रह्मन्! मैंने स्वप्नमें सीताको गङ्गातटपर विलाप करते देखा है, अतः उसके गर्भके विघ्नकी शान्तिके निमित्त किसी शुभ दिन और पुरुषसंज्ञक नक्षत्रके योगमें पुंसवन कर्म करनेके लिये शीघ्र ही आज्ञा दीजिये। श्रीरामके ऐसे वचनको सुनकर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ बोले ॥६-७॥

वसिष्ठ उवाच

कर्तव्या शुक्लपक्षे तु कृष्णपक्षो व्यपोहतु ।
पुष्यार्कयोगे पञ्चम्यां कार्यं पुंसवनं विभो ॥ ८ ॥
मुहूर्तस्य दिनं यावदागमिष्यति राघव ।
तावद् राम महाबाहो क्रियतां विप्रतर्पणम् ॥ ९ ॥

वसिष्ठजीने कहा—विभो! पुंसवन-संस्कार शुक्लपक्षमें करना चाहिये, अतः राघव! यह कृष्णपक्ष बीत जाय, फिर जब पञ्चमी तिथिमें पुष्यनक्षत्र और रविवारका योग होगा, तब पुंसवन करना उचित होगा। महाबाहु राम! जबतक इस मुहूर्तका दिन आता है, तबतक आप ब्राह्मणोंको दान-मान आदिसे संतुष्ट कीजिये ॥ ८-९ ॥

मुनेस्तद् वचनं श्रुत्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
सीतापुंसवनं भ्रातः पञ्चम्यां च भविष्यति ॥ १० ॥
तावत् त्वं गच्छ भद्रं ते जनकं च समानय ।
विश्वामित्रं मुनिश्रेष्ठं मुनिभिः परिवारितम् ॥ ११ ॥

महर्षि वसिष्ठके उस वचनको सुनकर श्रीरामने लक्ष्मणसे कहा—'भाई! सीताका पुंसवन-संस्कार पञ्चमी तिथिमें होगा। तबतक तुम महाराज जनक और मुनियोंसहित मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीको यहाँ बुला लाओ। जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो' ॥ १०-११ ॥

लक्ष्मणोऽपि नमस्कृत्य रामस्योत्तरतो ययौ ।
ततो रामो महाबाहुः शिल्पिभिर्मण्डपं शुभम् ॥१२॥
अकारयत् त्रिगव्यूतिमितमायामतः समम् ।
तस्मिन् वसिष्ठो रुचिरस्थण्डिलं समकल्पयत् ॥ १३ ॥
उदुम्बरफलानां च स्रजं तत्र चकार सः ।
शललं त्रिषु शुभ्रं च तथा वै सूत्रवेष्टनम् ॥ १४ ॥
पीठमौदुम्बरं तत्र चतुरस्रं च वल्लकीम् ।
समकल्पयदेतानि क्रियाङ्गानि मुनीश्वरः ॥ १५ ॥

श्रीरामकी यह आज्ञा प्राप्त होनेके पश्चात् लक्ष्मणजी उनके चरणोंमें प्रणाम करके प्रस्थित हुए। तदनन्तर महाबाहु श्रीरामने कारीगरोंद्वारा छः कोस लंबा-चौड़ा एक सुन्दर मण्डप तैयार कराया। उस मण्डपमें महर्षि वसिष्ठने एक सुन्दर वेदी बनवायी। वहाँ उन्होंने गूलरके फलोंकी माला तैयार करायी। जिसमें तीन जगह श्वेत रंग थे, ऐसा साहीका काँटा मँगाया और सूत्रवेष्टन (रक्षासूत्र) का भी संग्रह किया। इसके सिवा गूलर-काष्ठकी बनी हुई एक चौकोर चौकी और एक वल्लकी (वीणा) भी यथास्थान स्थापित की गयी। इस प्रकार मुनीश्वर वसिष्ठजीने पुंसवन-क्रियाके इन सभी उपकरणोंको एकत्रित कराया ॥ १२–१५ ॥

तावत् स लक्ष्मणस्तूर्णं विश्वामित्रं महामुनिम् ।
जनकं च समाहूय रामं नत्वेदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

तबतक लक्ष्मण शीघ्र ही मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी तथा महाराज जनकको बुलाकर ले आये और श्रीरामके चरणोंमें अभिवादन करके इस प्रकार बोले ॥ १६ ॥

लक्ष्मण उवाच

आगतो जनको राम विश्वामित्रो महातपाः ।
अर्घ्यादिक्रियया भ्रातः पूजयैतौ समागतौ ॥ १७ ॥

लक्ष्मणने कहा—श्रीरामजी! महातपस्वी विश्वामित्रजी तथा महाराज जनक आ गये हैं। भैया! अब इन दोनों समागत अतिथियोंका अर्घ्य आदि उपचारोंद्वारा सत्कार कीजिये ॥ १७ ॥

रामस्तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रनरेश्वरौ ।
नमस्कारार्घ्यदानेन पूजयामास तौ तदा ॥ १८ ॥

लक्ष्मणकी यह बात सुनकर श्रीरामने मुनि विश्वामित्र तथा राजा जनकको प्रणाम किया और अर्घ्य प्रदान करके उनकी पूजा की ॥ १८ ॥

ततः प्राप्ते मुहूर्ते च वसिष्ठो व्याहरद् वचः ।
राम त्वं सीतया सार्धं कुरु स्नानादिकाः क्रियाः ॥१९॥
मण्डपं च समायाहि मातृभ्रातृसमावृतः ।

तदनन्तर जब पुंसवनका मुहूर्त उपस्थित हुआ, तब वसिष्ठजीने श्रीरामसे इस प्रकार कहा—'राम ! अब आप सीतासहित स्नान आदि क्रियाएँ कीजिये और माताओं तथा भाइयोंके साथ मण्डपमें चलिये' ॥ १९½ ॥

अथ दाशरथी रामः सुस्नातः सीतया सह ॥ २० ॥
आगतो मण्डपं रम्यं ब्राह्मणैः समलंकृतम् ।
वेदविद्भिः सदाचारैः स्मृतिज्ञैः कर्मकोविदैः ॥ २१ ॥

तब दशरथनन्दन राम सीतासहित भलीभाँति स्नान करके शुद्ध हुए और फिर उस रमणीय मण्डपमें पधारे, जो वेदज्ञ, सदाचारी, स्मृतियोंके ज्ञाता और कर्मकाण्डमें कुशल ब्राह्मणोंसे सुशोभित था ॥ २०-२१ ॥

ततो वसिष्ठो रामं तां चतुष्के संन्यवेशयत् ।
चरुपूर्वमथो होमं तिलाज्याहुतिभिः क्रमात् ॥ २२ ॥
चक्रे ब्रह्मात्मजः सर्वं सलिलेनाभिषेचनम् ।
सीताया मूर्धजेष्वेव सूत्रवेष्टं समाक्षिपत् ॥ २३ ॥
विष्णुबीजकृतां मालां यज्ञाङ्गफलसम्भवाम् ।
वसिष्ठेन समाक्षिप्तां बिभ्रती जानकी तदा ॥ २४ ॥
ब्रह्मगोलकसंघातं बिभ्रतीव विराजते ।
वीणां प्रवीणो भरतो वादयञ्जानकीं प्रति ।
स शिक्षापयिषुर्गीतं गर्भस्येव बभौ विभुः ॥ २५ ॥

तत्पश्चात् वसिष्ठजीने श्रीराम और सीताको उस चौकोर चौकीपर बैठाया और स्वयं उन ब्रह्मकुमारने क्रमशः चरुसहित तिल और घीकी आहुतियोंसे हवन किया । फिर जलसे सीताजीके केशोंका अभिषेक करके उनपर वह (त्रिश्वेतशल्लकी कण्टक तथा) सूत्रवेष्टन (रक्षासूत्र) डाल दिया, फिर विष्णुबीज (कमलगट्टों) की माला और गूलरके फलोंसे बनी हुई मालाको भी उन्हीं केशोंपर ही रख दिया । वसिष्ठजीद्वारा डाली गयी उस मालाको धारण करके उस समय जानकीजीकी ऐसी शोभा हो रही थी मानो उन्होंने ब्रह्माण्डोंके समुदायको ही धारण कर लिया हो । इधर वीणा बजानेमें निपुण एवं सामर्थ्यशाली भरतजी सीताजीके समीप वीणा बजाते हुए ऐसे शोभित हो रहे थे, मानो वे गर्भस्थ बालकको गीतकी शिक्षा देना चाहते थे ॥ २२—२५ ॥

एवं कृतस्वस्त्ययनो रघूद्वहो
मुनीश्वरान् पायसशर्कराज्यैः ।
संतर्प्य वस्त्राणि सुवर्णभूषणं
ददौ रथानश्वगणान् द्विजेभ्यः ॥ २६ ॥

इस प्रकार सारी माङ्गलिक क्रियाओंके सम्पन्न हो जानेपर रघुवंशी श्रीरामने उन मुनीश्वरोंको खीर, शक्कर और घीसे बने हुए अन्य पदार्थोंका भोजन कराकर संतुष्ट किया और फिर उन ब्राह्मणोंको दक्षिणारूपमें बहुत-से वस्त्र, सोनेके बने हुए आभूषण, रथ और घोड़े प्रदान किये ॥ २६ ॥

जैमिनिरुवाच

जनकेनापि रामाय दत्तं राज्यमकण्टकम् ।
विश्वामित्रं पुरस्कृत्य वनवासं ततो ययौ ॥ २७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर महाराज जनकने भी श्रीरामको निष्कण्टक राज्य प्रदान किया और स्वयं विश्वामित्रजीको आगे करके वनवासके लिये चल दिये ॥

अयोध्यायां दाशरथिः शयानः किल सीतया ।
एकदा रात्रिसमये हृष्टः सीतां वचोऽब्रवीत् ॥ २८ ॥

अयोध्यापुरीमें एक दिन रातके समय जब दशरथनन्दन राम सीताजीके साथ शयन कर रहे थे, उस समय वे हर्षित होकर सीताजीसे बोले ॥ २८ ॥

राम उवाच

दोहदः कीदृशो भद्रे कस्मिन् वस्तुनि तद् वद ।
सीता तद् वचनं श्रुत्वा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ २९ ॥

श्रीरामने कहा—भद्रे ! इस समय तुम्हारे मनमें कैसी अभिलाषा है ? तुम्हें किस वस्तुकी इच्छा है ? उसे बताओ । यह बात सुनकर सीताजी अपने पति श्रीरामसे यों कहने लगीं ॥ २९ ॥

सीतोवाच

तव प्रसादान्मे कामः परिपूर्णः सदानघ ।
परं भागीरथीतीरे गन्तुमिच्छामि राघव ॥ ३० ॥
ऋषिपत्न्यश्च यत्रासन्नृषयोऽजिनवाससः ।

सीताजी बोलीं—निष्पाप प्राणनाथ ! यों तो आपकी कृपासे मेरी सारी कामनाएँ सदा परिपूर्ण होती रहती हैं, परंतु राघव ! इस समय जहाँ ऋषि-पत्नियाँ और मृगचर्मको ही वस्त्ररूपमें धारण करनेवाले ऋषिगण निवास करते हैं, उस गङ्गा-तटपर जानेके लिये मेरी बड़ी इच्छा हो रही है ॥३०½॥

जहास रामः किमिदं न तृप्ता वनवासतः ॥ ३१ ॥
सीते त्वं दण्डकारण्ये वर्षाणि नव पञ्च च ।
अद्य वा दोहदस्तेऽयं प्रथमो निष्फलः कथम् ॥ ३२ ॥
प्रातर्भागीरथीतीरे गमनं तेऽस्तु जानकि ।
इति तस्यै प्रतिश्रुत्य सुष्वाप ससुखं प्रभुः ॥ ३३ ॥

यह सुनकर श्रीराम ठठाकर हँस पड़े और बोले—'सीते ! यह क्या बात है ? क्या चौदह वर्षतक दण्डकारण्यमें निवास करनेपर भी वनवाससे तुम्हारी तृप्ति नहीं हुई ? परंतु आज गर्भकालमें जो तुम्हारी यह पहली अभिलाषा है, वह निष्फल कैसे हो सकती है ? अतः जनकनन्दिनि ! प्रातःकाल गङ्गा-तटके लिये तुम्हारी यात्रा होगी ।' सीताजीसे ऐसी प्रतिज्ञा करके सामर्थ्यशाली श्रीराम आनन्दपूर्वक नींद लेने लगे ॥३१—३३॥

निशीथे तु व्यतिक्रान्ते चाराः पुरचरा निशि ।
रामं रहः समागम्य वाक्यमूचुः पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥
तव कीर्तिः प्रतापश्च सर्वतो वर्ण्यते जनैः ।

आधी रात बीतनेपर रातके समय नगरमें पहरा देनेवाले गुप्तचर एकान्तमें श्रीरामके पास आकर अलग-अलग अपनी बातें सुनाने लगे—'राजन् ! सर्वत्र जनता आपकी कीर्ति और प्रताप-का गान कर रही है' ॥ ३४½ ॥

रामः पृच्छत्यतिदृढं लोकानां कीदृशी स्थितिः ॥ ३५ ॥
मम वा मम भार्याया भ्रातॄणां दुष्कृतं किल ।
सुकृतं वा त्वया चार भ्रमता निशि यच्छ्रुतम् ॥ ३६ ॥
तत् सत्यं वद चार त्वं मा भीतिं कुरु दण्डतः।
चारोऽपि रघुनाथं तं प्रत्युवाच हसन्निव ॥ ३७ ॥

तब श्रीरामने गुप्तचरोंसे अत्यन्त जोर देकर पूछा—'गुप्तचर ! आजकल मेरे नगरवासियोंकी स्थिति कैसी है ? रातमें परिभ्रमण करते समय तूने मेरे अथवा मेरी भार्या और भाइयोंके सम्बन्धमें जो कुछ भी दुराचार अथवा सदाचार-की चर्चा सुनी हो, उसे ठीक-ठीक बता । मेरी ओरसे दण्डका भय मत कर ।' तब वह गुप्तचर हँसते हुए-से रघुनाथजीसे कहने लगा ॥ ३५—३७ ॥

चार उवाच

राम त्वद्दर्शनादेव दुष्कृतं भस्मसाद् भवेत् ।
तवापि दुष्कृतं मन्ये विपरीतं रघूद्वह ॥ ३८ ॥

गुप्तचर बोला—रघुकुलभूषण राम ! पाप तो आपके दर्शनसे ही जलकर भस्म हो जाते हैं, फिर आपके लिये भी पापकी चर्चा तो मेरी समझसे विपरीत ही है ॥ ३८ ॥

वयं स्थानानि पापानि भ्रमामो रघुनन्दन ।
त्वां दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यो मुच्येम भरताग्रज ॥ ३९ ॥

रघुनन्दन ! मैं बहुत-से पापपूर्ण स्थानोंमें घूमता रहता हूँ; परंतु भरतजीके बड़े भैया ! आपका दर्शन करके मैं उन सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता हूँ ॥ ३९ ॥

तथापि लोको दुर्वारः किञ्चिद् दुष्टं वदत्यसौ ।
निशार्धे भ्रमता राजन् दृष्टं चित्रतरं मया ॥ ४० ॥

तथापि सारे संसारको रोक रखना बड़ा कठिन है । इसमें लोग कुछ-न-कुछ दोषारोपण कर ही देते हैं । राजन् ! अर्ध-रात्रिके समय भ्रमण करते हुए मैंने एक बड़ी विचित्र बात देखी है ॥ ४० ॥

कस्यचिद् रजकस्यास्यां पुर्यां भार्यात्यगाद् गृहम्।
पितुर्वेश्म समासाद्य तस्थौ दिनचतुष्टयम् ॥ ४१ ॥

(वह यह है कि) इस नगरीमें किसी धोबीकी भार्या घर-का त्याग करके चली गयी और वह अपने पिताके घर पहुँच-कर वहाँ चार दिनतक ठहर गयी ॥ ४१ ॥

रजकया जनकश्चिन्तामगमत् किं मया कृतम् ।
स्मृत्यागमविरुद्धं हि कन्या यत् पितृवेश्मनि ॥ ४२ ॥
तस्माद् दुहितरं चैतां नयिष्ये भर्तृसंनिधिम् ।
यथाम्बरस्थं कलुषं शोधयेऽहं स्वकैः करैः ॥ ४३ ॥
तथा स्थितायां कन्यायां गृहे यत् तन्न शोध्यते ।

तब उस धोबिनके पिताने मनमें विचार किया कि मैंने यह क्या कर डाला (जो कन्याको घरमें रख लिया) ? क्योंकि कन्याका पिताके घर (अधिक दिनतक) रहना स्मृति और शास्त्रके विरुद्ध है; इसलिये इस कन्याको मैं इसके पतिके पास पहुँचा दूँगा; क्योंकि जिस तरह कपड़ेमें लगी हुई मैलको मैं अपने हाथोंसे धोकर स्वच्छ कर देता हूँ, उस प्रकार इस कन्याके मेरे घरमें रह जानेसे मुझे जो कालिमा लगेगी, उसका मैं शोधन नहीं कर सकूँगा ॥ ४२-४३½ ॥

इत्युक्त्वा भ्रातृभिः सर्वै रजकः परिवेष्टितः ॥ ४४ ॥
जामातरं समासाद्य कन्यां तस्मै न्यवेदयत् ।

ऐसा कहकर वह धोबी अपने सभी जाति-भाइयोंके साथ अपने जामाताके पास जाकर अपनी कन्या उसे सौंपने लगा ॥

ततः क्रुद्धोऽब्रवीद् वाक्यं सृक्किणी परिलेलिहन्॥ ४५ ॥
जामाता हस्तमुद्यम्य रामोऽहमिति वो मतिः ।
राक्षसानां गृहे सीतां वसन्तीमाजहार यः ॥ ४६ ॥

तब वह जामाता धोबी क्रोधके कारण अपने गलफड़ोंको चाटता हुआ हाथ उठाकर यों कहने लगा—'क्या आपलोग समझते हैं कि मैं भी श्रीरामके ही समान हूँ, जिन्होंने राक्षसोंके घरमें रही सीताको पुनः लाकर रख लिया ?' ॥ ४५-४६ ॥

एतावदेव रघुनन्दन सोऽब्रवीत् तद्
वाक्यं पुनः पुनरिदं रजकोऽत्र कोपात् ।
राज्ञा समर्थपदवीमधितिष्ठता तद्
रामेण चेत् कृतमहं न तथा करोमि॥४७॥

रघुनन्दन ! वह रजक बारंबार क्रोधपूर्वक इतनी ही बात दुहराता रहा । फिर वह बोला—'समर्थ पदवीको प्राप्त हुए राजा श्रीरामने यदि ऐसा कर्म कर लिया (तो कर लें); किंतु मैं ऐसा नहीं करूँगा' ॥ ४७ ॥

इत्थं वचांसि स्म वदत्यवश्यं
नान्यो जनो वक्तुमलं बभूव ।
ततो मया वाक्यमिदं विविक्तं
सत्यं ब्रवीत्येष कुतो हि रामः ॥ ४८ ॥

महाराज ! वह धोबी तो अवश्य ऐसी बात कह रहा था, परंतु अन्य कोई मनुष्य अबतक ऐसी बात कहनेमें समर्थ नहीं हुआ है । उस समय धोबीकी बातपर विचार करके मैं इस निश्चयपर पहुँचा कि यह सत्य ही तो कह रहा है (कि मैं श्रीरामके समान नहीं हूँ); क्योंकि कहाँ श्रीराम और कहाँ यह नीच रजक । इन दोनोंकी क्या समानता है ? ॥ ४८ ॥

गङ्गातटद्वीपनिखातयूपः
स्वधर्मनिष्ठः पितृवाक्यकर्ता ।
जेता दशास्यस्य जगच्छरण्यः
स राघवः केन समोऽस्ति लोके ॥ ४९ ॥

जिन्होंने गङ्गातटवर्ती द्वीपोंमें बहुत-से यज्ञस्तम्भ स्थापित किये हैं, जो अपने धर्ममें तत्पर और पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले हैं, जिन्होंने दशमुख रावणपर विजय पायी है और जो जगत्के आश्रयदाता हैं, वे रघुनाथजी संसारमें किसके समान हो सकते हैं—कौन उनकी समानता कर सकता है ? ॥

आचारेषु निषण्णोऽयं न गुणेषु च सस्पृहः ।
मूढो न वेत्ति तं रामं गुणिनं रजको ह्ययम् ॥ ५० ॥
मनसा चिन्तयित्वैवं राम त्वामहमागमम् ।

यह मूर्ख धोबी केवल लोकाचारोंमें ही फँसा हुआ है, गुणोंकी ओर इसका ध्यान नहीं है, इसीसे यह सर्वगुणसम्पन्न उन रामको नहीं समझ रहा है । महाराज राम ! अपने मनमें यों विचारकर मैं आपके पास आया हूँ ॥ ५०½ ॥

दूतं तं तु विसृज्याशु चिन्तयामास राघवः ॥ ५१ ॥
शुद्धापि जानकी वह्नौ लोकेऽस्मिन् परिगर्ह्यते ।
तस्मात् त्यजेयं नो वेति चिरं दध्यौ स जानकीम्॥ ५२ ॥

तदनन्तर रघुनाथजी शीघ्र ही उस दूतको विदा करके स्वयं इस प्रकार चिन्ता करने लगे—यद्यपि अग्नि-परीक्षाद्वारा जानकी शुद्ध प्रमाणित हो चुकी है, तथापि इस संसारमें उसकी निन्दा हो रही है; इसलिये अब मैं उसका परित्याग कर दूँ अथवा नहीं, इस प्रकार वे बहुत देरतक जानकीके विषयमें विचार करते रहे ॥ ५१-५२ ॥

कथं तां मृगशावाक्षीं सीतां पद्मनिभाननाम् ।
त्यजामि श्रोत्रियो मुख्यामाचारस्येव पद्धतिम्॥ ५३ ॥

वे सोचने लगे कि 'जैसे श्रोत्रिय ब्राह्मण आचारकी मुख्य पद्धतिको नहीं छोड़ सकता, उसी तरह मैं इस मृगशावक-सदृश नयनोंवाली एवं पद्ममुखी सीताका परित्याग कैसे कर दूँ ? ॥

अथ चेमां परित्यक्ष्ये कलौ विप्रा यथा श्रुतिम्।
इति चिन्तयतस्तस्य प्रातःकालोऽभवत् तदा ॥ ५४ ॥

'अथवा जैसे कलियुगमें विप्रगण प्रायः वेद-वाणीको त्याग देते हैं, उसी प्रकार मैं भी इसका परित्याग कर दूँगा ।' वे इसी उधेड़-बुनमें पड़े थे कि प्रातःकाल हो गया ॥ ५४ ॥

जैमिनिरुवाच

ततोऽसौ जानकीत्यागे मनः कृत्वा रघूद्वहः।
आह्वयामास भरतं शत्रुघ्नं लक्ष्मणं तथा ॥ ५५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर रघुनाथजीने अपने मनमें जानकीके परित्यागका ही निश्चय करके भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको बुलवानेका विचार किया ॥ ५५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो भरतो लक्ष्मणस्तथा ।
शत्रुघ्नश्च महाबाहुः सेवितुं रघुनन्दनम् ॥ ५६ ॥

इसी बीचमें उन रघुनन्दनकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिये भरत, लक्ष्मण और महाबाहु शत्रुघ्न आकर स्वयं ही उपस्थित हुए ॥ ५६ ॥

ददृशुस्ते ततो रामं विषण्णं दीनचेतसम् ।
प्रोचुस्तेऽन्योन्यमासीनं रामं शीघ्रं न चागताः॥ ५७ ॥
तस्मात् किं कुपितो भ्राता दृष्ट्वास्मान् दानवर्जितान् ।
किमस्माभिर्द्विजश्रेष्ठाः प्रातर्नो पूजिता इति ॥ ५८ ॥
न प्रातर्जागृताः किं वा किं वा शीघ्रं नमस्कृताः।
इत्येतत् संवदन्तस्ते भ्रातरो वह्नितेजसः ॥ ५९ ॥
आयाता रघुनाथं तं नमस्कृत्येदमब्रुवन् ।
त्वन्मनस्कान् सदा राम त्वत्समर्पितकर्मणः॥ ६० ॥
त्वद्दर्शनसमुत्कण्ठान् किमस्मान् नाभिनन्दसे।
रामस्तेषां वचः श्रुत्वा स शनैर्वाक्यमब्रवीत् ॥ ६१ ॥

वहाँ पहुचकर उन्होंने देखा कि श्रीरामका मन दुखी है और वे विषादमग्न हुए बैठे हैं, तब वे आपसमें कहने लगे—'हमलोग शीघ्र ही सेवामें उपस्थित नहीं हुए इसलिये या हमलोगोंको दान-रहित देखकर, अथवा हमलोगोंने प्रातःकाल उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा नहीं की है, इस कारणसे, किंवा प्रातःकाल हम नींदसे नहीं जागे या शीघ्र आकर इन्हें नमस्कार न कर सके, इस कारणसे क्या हमारे ज्येष्ठ भ्राता श्रीराम रुष्ट हो गये हैं ?' इस प्रकार संकल्प-विकल्प करते हुए अग्निके समान तेजस्वी वे तीनों भाई रघुनाथजीके समीप आये और उन्हें प्रणाम करके यों कहने लगे—'भैया राम ! हमलोग सदा आपके मनके अनुकूल ही चलते हैं, हमारे सम्पूर्ण कर्म आपको ही समर्पित हैं और हमारे मनमें सदा आपके दर्शनकी उत्कण्ठा बनी रहती है, फिर आज आप हमारा अभिनन्दन क्यों नहीं कर रहे हैं ?' तब भाइयोंकी बात सुनकर श्रीराम धीरे-धीरे बोले ॥ ५७–६१ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने रामवाक्यं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसङ्गमें श्रीरामवाक्यनामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—सीता-परित्यागके विषयमें श्रीरामके साथ तीनों भाइयोंकी बातचीत, श्रीरामका लक्ष्मणको सीता-परित्यागके लिये आदेश, लक्ष्मणजीका रथ लेकर सीताजीके महलमें जाना, सीताजीका सासुओंकी आज्ञा लेकर सामग्रीसहित रथपर बैठना और गङ्गातटके लिये प्रस्थान

जैमिनिरुवाच

रामस्तु कथयामास चारेणोक्तं यथा निशि ।
सीता च गर्ह्यते लोकैर्यथा पाखण्डिभिः श्रुतिः॥ १ ॥
लोकापवादभीतेन त्यज्यते जानकी मया ।
संसारभयभीतेन योगिना ममता यथा ॥ २ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर श्रीराम, रात्रिमें दूतने जो-जो बातें कही थीं, उनका वर्णन करते हुए कहने लगे—'भाइयो ! जैसे पाखण्डीलोग श्रुतियोंपर दोषा-रोपण करते हैं, उसी तरह लोग सीताकी निन्दा कर रहे हैं; इसलिये संसारके भयसे भीत होकर ममताका परित्याग करने-वाले योगीकी भाँति मैं लोकापवादसे डरकर जानकीको त्याग देना चाहता हूँ' ॥ १-२ ॥

तद् रामवाक्यमाकर्ण्य वज्रपातोपमं तदा ।
भ्रातरस्ते त्रयोऽभूवन् रोमाञ्चितवपुर्धराः ॥ ३ ॥

वज्रपातके सदृश श्रीरामके उस वचनको सुनकर उन तीनों भाइयोंके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये ॥ ३ ॥

अब्रवीद् भरतस्तेषां रघुनाथमिदं वचः ।
कृपालुत्वं रामचन्द्र त्वय्येव परिगीयते ॥ ४ ॥

तत्पश्चात् उन भाइयोंमेंसे भरतजी आगे होकर रघुनाथजी-से इस प्रकार कहने लगे—'भैया राम ! आपकी कृपालुताकी तो बड़ी प्रशंसा हो रही है (फिर आप ऐसी कठोरता क्यों धारण कर रहे हैं) ॥ ४ ॥

अन्त्यजेभ्यो बलात् कश्चित् कपिलां गां समानयेत्।
पश्चात् संसर्गदुष्टत्वात् त्यजेत् तां विपिने तु कः॥ ५ ॥
जानकीं त्वं तथाऽऽदाय राक्षसात्त्यक्तुमिच्छसि ।
सीता तुभ्यं ददौ शुद्धिमात्मनोऽग्निमुखे पराम्।
तत्त्वया विस्मृतं राम किं वा पित्रा पुरोदितम् ॥ ६ ॥

'भला, ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो किसी कपिला गौको बलपूर्वक म्लेच्छके हाथसे छीनकर पुनः संसर्गजनित दोषके कारण उसे दूषित बताकर जंगलमें त्याग देगा ? उसी तरह आप जानकीको राक्षसके हाथसे छुड़ाकर पुनः त्याग देनेकी इच्छा कर रहे हैं । सीताजी अग्निमुखमें प्रवेश करके अपनी उत्तम शुद्धिका प्रमाण आपको दे चुकी हैं । श्रीराम ! पहले (सीताकी अग्नि-परीक्षाके समय) पिताजीने जो कुछ कहा था, क्या आप उसे भूल गये ? ॥ ५-६ ॥

वह्नौ प्रदीप्ते ज्वालाभिर्लिहन्तीभिरिवाम्बरम् ।
सीतायां च प्रविष्टायां तदा दशरथोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
विमानस्थोऽम्बरे राम त्वां प्रतीदृग् वचः शुभम् ।
इमां शुद्धां विद्धि पुत्र जानकीं भर्तृतत्पराम् ॥ ८ ॥
अस्याश्चरित्रेण कुलं नः सर्वं विमलीकृतम् ।
ये मृताः पुत्रशोकेन न तेषां गतिरुत्तमा ॥ ९ ॥
जानकी नः स्नुषा येन तेन वासस्त्रिविष्टपे ।
एतद् दशरथेनोक्तं वचनं विस्मृतो भवान् ॥ १० ॥

'भैया राम ! जिस समय अपनी ज्वालाओंसे आकाशको चूमती हुई-सी आग प्रज्वलित हो रही थी और सीताजी उसमें प्रवेश कर गयी थीं, उस समय आकाशमें विमानपर बैठे हुए पिता दशरथजीने आपके प्रति ऐसे शुभ वचन कहे थे—'बेटा ! इस पतिपरायणा जानकीको तुम सर्वथा शुद्ध समझो । इसके चरित्रसे हमारा सारा कुल निर्मल (पवित्र) हो गया है । जो लोग पुत्रशोकके कारण मृत्युको प्राप्त हुए हैं, उन्हें परलोकमें उत्तम गति नहीं प्राप्त होती है, परंतु जानकी हमारी पुत्रवधू है, इसलिये हमें स्वर्गमें स्थान मिला है ।' इस प्रकार पिता दशरथजीके कहे हुए वचनोंको क्या आप भूल गये ? ॥

ब्रह्मादिभिर्देवगणैर्यत् प्रोक्तं तच्च संस्मर ।
वह्नौ विशुद्धा वैदेही फुल्ला सत्कलिका यथा ॥ ११ ॥
गुम्फिता वानरैर्दृष्टा मालेव रघुसत्तम ।
तथापि ते मनो राम कठिनं परिलक्ष्यते ॥ १२ ॥

'उस समय ब्रह्मा आदि देवगणोंने जो कुछ कहा था, उसका भी तो स्मरण कीजिये । रघुश्रेष्ठ ! अग्निपरीक्षाद्वारा शुद्ध हुई जानकी खिली हुई सुन्दर कली-सी और गूँथी हुई मनोहर माला-सी सुशोभित हुई थीं । उस समय उन्हें वानरोंने भी देखा था; राम ! इतनेपर भी उनके प्रति आपका मन कठोर दिखायी देता है' ॥ ११-१२ ॥

जैमिनिरुवाच

भरतेनेदृशैर्वाक्यैः प्रोक्तो रामोऽब्रवीद् वचः ।
सत्यमुक्तं त्वया भ्रातः शुद्धा जनकनन्दिनी ॥ १३ ॥
लोकापवादो दुर्वारो राज्ञां कीर्तिविनाशनः ।
कीर्तिहीनं जन्म येषां जीवन्तोऽपि मृता हि ते ॥ १४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! जब भरतजीने ऐसी बातें कहीं, तब श्रीराम कहने लगे—'प्यारे भाई ! तुमने बिल्कुल ठीक कहा है । जानकी सर्वथा शुद्ध हैं; परंतु इस लोकापवादका रोका जाना तो बड़ा कठिन है । यह राजाओंकी कीर्तिका विनाश करनेवाला है । जिनका जीवन कीर्तिहीन हो जाता है, वे जीते हुए ही मृतकके समान हैं ॥ १३-१४ ॥

पुरूरवा हरिश्चन्द्रो नहुषो वैन्य एव च ।
वरिष्ठा नृपमुख्यास्ते गीयन्ते यशसा भुवि ॥ १५ ॥

'पुरूरवा, हरिश्चन्द्र, नहुष और वेननन्दन पृथु आदि जो श्रेष्ठ नरेश हो गये हैं, उनके उत्तम यशका इस भूतलपर गान किया जाता है ॥ १५ ॥

मान्धाता सगरश्चैव ह्यम्बरीषो भगीरथः ।
ऋतुपर्णो नलश्चैव ये चान्ये पुण्यकीर्तयः ॥ १६ ॥
ख्यातिं प्राप्ता हि राजानः सत्कीर्त्यैव रघूद्वह ।
न कीर्तिसदृशं किञ्चिन्नराणामिह विद्यते ॥ १७ ॥
पापत्राणं पुण्यदं च स्वर्गादिप्राप्तिकारकम् ।

'मान्धाता, सगर, अम्बरीष, भगीरथ, ऋतुपर्ण तथा नल—ये तथा अन्य भी जो पुण्यकीर्ति नरेश हो चुके हैं, वे सभी उत्कृष्ट कीर्तिके कारण ही प्रसिद्धिको प्राप्त हुए हैं । रघूद्वह ! लोकमें मनुष्योंके लिये सत्कीर्तिके समान पापसे रक्षा करनेवाली, पुण्यप्रदायिनी और स्वर्ग आदि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति करानेवाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है ॥ १६-१७½ ॥

अपकीर्तिस्तु यस्यैव गीयते मानवैर्भुवि ॥ १८ ॥
तस्य जन्म वृथा मन्ये जीवितं च निरर्थकम् ।

'इस भूतलपर मनुष्य जिसकी अपकीर्तिका ही वर्णन करते हैं, मेरे विचारसे तो उसका जन्म लेना ही व्यर्थ हो गया और उसका जीवन भी निरर्थक ही है ॥ १८½ ॥

मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुद्धेन कर्मणा ॥ १९ ॥
युगान्तमपि नैवेह नरः कीर्तिं विना क्वचित् ।

'इस संसारमें शुद्ध कर्म करता हुआ मनुष्य यदि दो

घड़ीतक ही जीवित रहे तो उसका वह जीवन श्रेष्ठ है; परंतु कीर्तिहीन होकर युगान्तपर्यन्त जीवित रहना भी उत्तम नहीं है॥

किं न जीवन्ति हि चिरं काकोलूकादिपक्षिणः ॥ २० ॥
तथा तज्जीवितं मन्ये नृणां कीर्तिविवर्जितम् ।

'क्या कौए और उल्लू आदि पक्षी चिरकालतक जीवित नहीं रहते ? कीर्तिहीन मनुष्योंका जीवन भी मैं उन्हींकी तरह मानता हूँ ॥ २०½ ॥

यैः पुत्रैर्बन्धुभिर्दारैः पुंसामपयशो भवेत् ॥ २१ ॥
त्याज्याः पुत्रा बान्धवाश्च दाराः प्राणप्रिया अपि ।

'जिन स्त्री, पुत्र और भाई-बन्धुओंसे मनुष्यको अपयशका भागी होना पड़े, वे प्राणोंके समान प्यारे हों तो भी उनका परित्याग कर देना चाहिये ॥ २१½ ॥

श्रूयते हि पुरा राज्ञा शिबिना सत्यवादिना ॥ २२ ॥
कीर्त्यर्थे हि स्वदेहस्य दत्तं मांसं हि जिष्णवे ।
तथैव कवचं कर्णो वासवाय ददौ पुरा ॥ २३ ॥
जीवनं वैनतेयाय ददौ जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि कीर्त्यर्थं कीर्तिकृदृषिः ॥ २४ ॥
तस्मादिमां परित्यक्ष्ये जीर्णां त्वचमिवोरगः ।

'सुना जाता है कि पूर्वकालमें सत्यवादी राजा शिबिने कीर्तिके लिये अपने शरीरका मांस काटकर बाजरूपधारी इन्द्रको समर्पित कर दिया था । उसी तरह (यशकी प्राप्तिके लिये ही) कर्णने भी अपना जन्मजात कवच इन्द्रको दान कर दिया था और जीमूतवाहनने अपना जीवन ही गरुडको अर्पित कर दिया था । उत्तम कीर्तिका सम्पादन करनेवाले महर्षि दधीचिने कीर्तिकी कामनासे अपनी हड्डियाँतक दान कर दी थीं । इसलिये मैं भी केंचुलको त्याग देनेवाले सर्पकी भाँति सीताका परित्याग कर दूँगा ॥ २२–२४½ ॥

जीविते मम चेदिच्छा तव कैकेयिनन्दन ॥ २५ ॥
पुनस्त्वया न वक्तव्यं तदीदं वचनं मयि ।

'कैकेयीनन्दन ! यदि तुम मुझे जीवित रखना चाहते हो तो मेरे विषयमें तुम्हें पुनः ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये' ॥

तावत् स लक्ष्मणः क्रुद्धो धुन्वन् हस्तावथाब्रवीत्॥२६॥
निष्पिष्य पाणिना पाणिं निःश्वसन्नुरगो यथा।
विसृजंश्च स्वनेत्राभ्यां कवोष्णं वारि दुःखजम् ॥ २७ ॥

यह सुनकर लक्ष्मणजी क्रोधवश हाथसे हाथको मलते हुए सर्पकी भाँति दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगे तथा नेत्रोंसे दुःखजन्य गरम-गरम आँसू बहाते और अपने हाथोंको हिलाते हुए बोल उठे ॥ २६-२७ ॥

लक्ष्मण उवाच

आः किं लोकापवादेन त्याज्या सीता रघूद्वह ।
भार्याकलहतः कश्चिन्मातरं त्यक्तुमर्हति ॥ २८ ॥
तथा त्वं सर्वलोकस्य जननीं हातुमिच्छसि ।
पापिनस्तान् हनिष्यामि ये सीतां दूषयन्ति हि ॥ २९ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—हा रघुनन्दन ! लोकापवादके कारण क्या सीताका परित्याग करना उचित है ? क्या कोई पत्नीके कलह करनेसे अपनी माताको त्याग देना उचित समझेगा ? उसी तरह आप भी सम्पूर्ण लोकोंकी जननी सीताका परित्याग करना चाहते हैं । जो सीताजीपर दोषारोपण कर रहे हैं, मैं उन समस्त पापियोंका वध कर डालूँगा ॥ २८-२९ ॥

म्लेच्छपूज्यैरर्धमुण्डैर्यवनैर्दूष्यते श्रुतिः ।
सा किं त्याज्या द्विजवरैरिति राम विचारय ॥ ३० ॥
शत्रुघ्नः कुपितस्तावद् राघवं प्रत्यवोचत ।

भैया राम ! इसपर आप ही विचार कीजिये कि म्लेच्छोंद्वारा पूजित अर्धमुण्डित यवन यदि श्रुतिको दूषित बताते हैं तो क्या द्विजश्रेष्ठोंको उस श्रुतिका परित्याग कर देना चाहिये ? तदनन्तर शत्रुघ्नजी भी क्रुद्ध होकर रघुनाथजीसे कहने लगे ॥

शत्रुघ्न उवाच

राम त्वं यद् वचो ब्रूषे त्यक्ष्ये प्राणानहं यथा ।
त्वया ये त्याजिताः प्राणास्तेऽमरत्वं प्रपेदिरे ॥ ३१ ॥
यदि त्वं हास्यसि प्राणानमरस्त्वं भविष्यसि ।
तथा ये त्वां समाश्रित्य वर्तेयुः पापयोनयः ॥ ३२ ॥
निर्दुःखा नीरुजास्ते स्युः किं पुनर्जनकात्मजा ।
अथवा त्वां मृतं सीता जीवयेत् पतिलालसा ॥ ३३ ॥
त्वं च तां मृगशावाक्षीं मृतां जीवयसे कथम् ।
शत्रुघ्नस्य वचः श्रुत्वावोचद् रामः शनैः शनैः ॥ ३४ ॥

शत्रुघ्न बोले—भैया राम ! आप जो यह कह रहे हैं कि मैं अपने प्राण त्याग दूँगा, सो यदि वास्तवमें आप प्राणत्याग कर देंगे तो अमर हो जायँगे; क्योंकि अबतक जितने लोग आपके हाथों मृत्युको प्राप्त हुए हैं, उन्हें अमरत्वकी प्राप्ति हो गयी है । जो पापयोनिवाले जीव आपकी शरण ग्रहण करके जीवन-यापन करते हैं, जब वे भी दुःखरहित और नीरोग हो जाते हैं, तब जानकीके विषयमें क्या कहना है !

अथवा यदि आप मर ही जायँ तो पतिकी लालसावाली सीताजी आपको पुनः जीवित कर सकती हैं, परंतु मृगके छौनेके-से नेत्रोंवाली सीताके मरनेपर आप उन्हें कैसे जिला सकेंगे ? शत्रुघ्नजीकी यह बात सुनकर श्रीराम धीरे-धीरे बोले ॥

राम उवाच

आत्मानमप्यहं जह्यां युष्मांश्च पुरुषर्षभ ।
अपवादभयाद् भीतः किं पुनर्जनकात्मजाम् ॥ ३५ ॥

श्रीरामने कहा—पुरुषश्रेष्ठ ! मैं लोकापवादके डरसे भयभीत होकर अपनेको तथा तुम सभी भाइयोंको भी त्याग सकता हूँ; फिर जानकीकी तो बात ही क्या है ? ॥ ३५ ॥

जैमिनिरुवाच

रामे ब्रुवति राजेन्द्र सीतां त्यक्तुं कृतोद्यमे ।
ततो भरतशत्रुघ्नौ गृहं स्वं स्वमगच्छताम् ॥ ३६ ॥
लक्ष्मणो न ययौ रामं त्यक्त्वा दुःखाटवीगतम् ।
लक्ष्मणं केवलं दृष्ट्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—राजेन्द्र ! तदनन्तर सीताका परित्याग करनेके लिये उद्यत हुए श्रीरामके ऐसा कहनेपर भरत और शत्रुघ्न अपने-अपने महलको चले गये; परंतु लक्ष्मण दुःखरूपी काननमें भटकते हुए रामको एकाकी छोड़कर न जा सके । उस समय लक्ष्मणको अकेले देखकर श्रीराम यों कहने लगे—॥ ३६-३७ ॥

सौमित्रे छिन्धि खड्गेन शिरो मे न विचारय ।
सीतां भागीरथीतीरे त्यक्तुं वा गच्छ मा चिरम् ॥३८॥

'सुमित्रानन्दन ! या तो तुम बिना कोई अन्यथा विचार किये तलवारसे मेरा सिर काट डालो अथवा सीताको गङ्गातटपर छोड़ आनेके लिये जाओ । बस, अब देर मत करो ॥३८॥

सीतापरित्यागभवो दोषो मम तवास्तु न ।
नौमि ते चरणौ भ्रातः सीतां मुञ्च सरित्तटे ॥ ३९ ॥

'सीताके परित्यागसे उत्पन्न हुए दोषका भागी मैं होऊँगा। तुम्हें इसका पाप नहीं लगेगा । प्यारे भाई ! मैं तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार करता हूँ; तुम सीताको गङ्गातटपर छोड़ आओ' ॥

रामेणोक्तो लक्ष्मणस्तु लज्जयावनतः श्वसन् ।
संशयाक्रान्तचित्तः संश्चिन्तयामास चेतसि ॥ ४० ॥

श्रीरामके ऐसा कहनेपर लक्ष्मणजी लज्जासे झुक गये । वे लंबी साँस लेने लगे । उनका चित्त संशयाच्छन्न हो गया; अतः वे मनमें विचारने लगे—॥ ४० ॥

श्रूयते धर्मशास्त्रेषु गुरोराज्ञा गरीयसी ।
पुरा परशुरामेण स्वपितुर्वचनात्तथा ॥ ४१ ॥
परश्वधेन वै छिन्नमाशु स्वजननीशिरः ।

'धर्मशास्त्रोंमें ऐसा सुना जाता है कि गुरुजनोंकी आज्ञा गुरुतर होती है । इसीलिये पूर्वकालमें परशुरामजीने अपने पिताकी आज्ञा मानकर फरसेसे शीघ्र ही अपनी माताका सिर काट लिया' ॥ ४१½ ॥

मनसा निश्चयं कृत्वा कर्तुं रामवचो नृप ॥ ४२ ॥
यन्तारमब्रवीद् वीरो रथमानय साश्वकम् ।

राजन् ! इस प्रकार श्रीरामकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपने मनमें दृढ़ निश्चय करके वीरवर लक्ष्मणने अपने सारथिसे कहा—'सूत ! घोड़े जोतकर रथ ले आओ' ।४२½।

तेनानीतं रथवरं समारुह्य जगाम सः ॥ ४३ ॥
सीताभवनमुद्दिश्य ततोऽश्वा न्यपतन् भुवि ।
अथ यन्त्रा कशाघातैस्ताडितास्ते ययुः शनैः ॥ ४४ ॥

तब सारथिने वह उत्तम रथ लाकर उपस्थित किया और लक्ष्मणजी उसपर सवार होकर सीताजीके महलकी ओर चल दिये । मार्गमें घोड़े पृथ्वीपर गिर पड़े । फिर सारथिके चाबुककी मारसे पीडित होकर वे उठे और धीरे-धीरे चलने लगे ॥ ४३-४४ ॥

सम्प्राप्य सीताभवनं लक्ष्मणोऽवातरद् रथात् ।
प्रविश्य भवनं सीतां नमश्चक्रेऽप्यवाङ्मुखः ॥ ४५ ॥

सीताजीके महलके निकट पहुँचकर लक्ष्मणजी रथसे उतर पड़े और भवनके भीतर प्रवेश करके अवनतमुख होकर उन्होंने सीताजीको प्रणाम किया ॥ ४५ ॥

सीतैवंविधमालोक्य लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।

इस प्रकार लक्ष्मणको आया हुआ देखकर सीताजी कहने लगीं ॥ ४५½ ॥

सीतोवाच

मनोरथप्रदो भर्त्ता मम राजीवलोचनः ॥ ४६ ॥
मया हसन्त्या यद् रात्रौ याचितं तद् ददौ रघुः ।
दत्तेऽपि निष्फलं देव यावत्त्वं नैव दृश्यते ॥ ४७ ॥

सीताजी बोलीं—मेरे कमलनयन स्वामी सदा मेरा मनोरथ पूर्ण करते रहते हैं । रातके समय मैंने हँसी-हँसीमें उनसे जो याचना की थी, रघुनाथजीने उसे पूर्ण करनेकी स्वीकृति दे दी थी; परंतु देवर ! जबतक तुम मुझे नहीं दीख

पड़े थे, तबतक मैं उनके स्वीकृति देनेपर भी उसे निष्फल ही समझती थी ॥ ४६-४७ ॥

अधुना तद् रघोर्वाक्यं सत्यं कर्तुं त्वमागतः ।
गृहीष्यामि विचित्राणि वासांस्यगुरुचन्दनम् ॥ ४८ ॥
मुनिभ्यो मुनिपत्नीभ्यो दातुं श्रेयोऽभिवृद्धये ।

इस समय जब तुम रघुनाथजीके उस कथनको सत्य करनेके लिये आ गये हो, तब मैं अपने कल्याणकी अभिवृद्धिके लिये वहाँ रहनेवाले मुनियों एवं मुनिपत्नियोंको देनेके लिये सुन्दर-सुन्दर वस्त्र, अगुरु और चन्दन आदि ले चलूँगी॥४८½॥

तत् तस्या वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो हृदि विव्यथे ॥ ४९ ॥
मुञ्चन्नश्रूणि शनकैरेवं कुर्विति सोऽब्रवीत् ।
भ्रातुर्वचनपाशेन बद्धः परवशस्तदा ॥ ५० ॥

सीताजीके उस वचनको सुनकर लक्ष्मणजीके हृदयमें बड़ी पीड़ा हुई, परंतु उस समय वे भाईके वचनरूपी पाशसे बँधे होनेके कारण परबश थे, अतः आँसू बहाते हुए धीरे-से बोले—'ऐसा ही कीजिये' ॥ ४९-५० ॥

जैमिनिरुवाच

ततः सीता दुकूलानि निदधौ स्यन्दनोपरि ।
अजिनानि विचित्राणि खाद्यानि विविधानि च ॥ ५१ ॥
पादुके रामचन्द्रस्य सौवर्णे मणिचित्रिते ।
एवं संस्थाप्य वस्तूनि श्वश्रूं प्रष्टुमथो ययौ ॥ ५२ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर सीताजीने उस रथपर श्रीरामचन्द्रजीकी मणिजटित सोनेकी खड़ाऊँ रखकर तत्पश्चात् रेशमी वस्त्र, सुन्दर मृगचर्म और अनेक प्रकारके भोज्य पदार्थ रखे । इस तरह सारी उपयोगी वस्तुएँ रखकर वे साससे आज्ञा लेनेके लिये गयीं ॥ ५१-५२ ॥

कौसल्यां रामजननीं सीता नत्वेदमब्रवीत् ।
दोहदो मम संजातो रन्तुं भागीरथीतटे ॥ ५३ ॥
तं च पूरयितुं प्राप्तो लक्ष्मणो मम देवरः ।
अनुज्ञा युष्मदीया चेत्ततो गच्छामि तद् वनम् ॥५४॥
सीतावचनमाकर्ण्य कौसल्या प्राह जानकीम् ।

वहाँ पहुँचकर सीताजी राम-माता कौसल्याजीके चरणोंमें प्रणाम करके बोलीं—'अम्ब ! इस गर्भकालमें गङ्गाजीके तटपर जाकर आनन्दपूर्वक विचरण करनेके लिये मेरे मनमें इच्छा जाग्रत् हुई है और उसे पूर्ण करनेके लिये मेरे देवर लक्ष्मण तैयार होकर आ गये हैं । अब यदि आपकी आज्ञा मिले तो मैं उस वनमें जाना चाहती हूँ ।' सीताजीकी बात सुनकर कौसल्याजीने उनसे कहा ॥ ५३-५४½ ॥

कौसल्योवाच

सीते कथं वनं यासि वृक्षकण्टकसंयुतम् ।
वराहव्याघ्रसिंहादिसत्त्वैर्व्याप्तं भयंकरम् ॥ ५५ ॥
शीतोष्णवातवर्षादिदुःखदं त्वमनिन्दिते ।
चिरात् प्राप्तं राज्यसुखं परित्यज्य शुचिस्मिते ॥ ५६ ॥
कठोरहृदयैः सेव्यं वनं गन्तुमिहेच्छसि ।
त्वं तु रामं परित्यज्य वनं गन्तुं न चार्हसि ॥ ५७ ॥
मुखं प्रभाते मलिनं तवोष्ठौ शुष्यतः श्रमात् ।

कौसल्याजी बोलीं—पवित्र मुसकानवाली सीते ! तू चिरकालतक कष्ट भोगनेके पश्चात् प्राप्त हुए राज्यसुखका परित्याग करके क्यों वनमें जाना चाहती है ? वह वन तो वृक्ष और काँटोंसे भरा हुआ है, सूअर, व्याघ्र, सिंह आदि हिंसक जन्तुओंसे व्याप्त होनेके कारण बड़ा भयावना है । अनिन्दिते ! उसमें सर्दी-गरमी, आँधी-वर्षा आदिका कठिन दुःख सहना पड़ता है । तू जिस वनमें जानेके लिये तैयार है, उसका सेवन तो कठोर हृदयवाले मनुष्य ही कर सकते हैं । अतः श्रीरामको छोड़कर तेरा वनमें जाना उचित नहीं है । वहाँ प्रातःकाल तेरा मुख मलिन हो जायगा और होंठ परिश्रमके कारण सूख जायँगे ॥ ५५–५७½ ॥

सीतोवाच

मद्भर्त्ता वनवासी च सदा कण्टकमर्दनः ॥ ५८ ॥
निर्मलो जीवयेद् यस्तु वानरान् कोटिशो रणे ।
तं स्मरन्तीं तादृशीं मां दुःखदं न वनं भवेत् ॥ ५९ ॥

सीताजीने कहा—सासजी ! मेरे पतिदेव वनमें निवास कर चुके हैं, वे वहाँ सदा काँटोंका मर्दन किया करते थे (अतः मुझे उन कण्टकोंसे कष्ट न होगा) । जिन निर्मल रघुनाथजीने रणक्षेत्रमें करोड़ों मरे हुए वानरोंको जीवित कर दिया था, मुझे उनका स्मरण करती हुई जानकर वन मेरे लिये कष्टदायक नहीं होगा ॥ ५८-५९ ॥

रामनामजपन्त्याश्च ममोष्ठौ शुष्यतः कथम् ।
मनोवाक्कर्मभिः सेवा युष्मदीया कृता मया ॥ ६० ॥
ततो मम वने नार्तिर्भविष्यति च नौमि वः ।
इति प्रदक्षिणीकृत्य श्वश्रूं सीताभिनन्दिता ॥ ६१ ॥

कैकेयीं च सुमित्रां च नत्वा पृष्ट्वा जगाम सा ।
यत्रासौ लक्ष्मणः शूरो रथमादाय तस्थिवान् ॥ ६२ ॥
आरुरोह रथं सीता हर्षनिर्भरमानसा ।

जब मैं राम-नामका जप करती रहूँगी, तब मेरे होंठ सूख कैसे जायँगे ? अम्ब ! मैंने मन, वचन तथा क्रियाद्वारा आपकी सेवा की है, उसके फलस्वरूप मुझे वनमें किसी प्रकारकी पीडा नहीं होगी । मैं आपके पैरों पड़ती हूँ (मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये) । ऐसा कहकर अनिन्दिता सीताने अपनी सास कौसल्याजीकी प्रदक्षिणा की और फिर कैकेयी तथा सुमित्राके चरणोंमें नमस्कार किया । तत्पश्चात् उनकी अनुमति लेकर सीताजी जहाँ शूरवीर लक्ष्मणजी रथ लेकर खड़े थे, वहाँ जा पहुँचीं और हर्षपूर्ण मनसे उस रथपर जा बैठीं ॥ ६०–६२½ ॥

सगद्गदितकण्ठोऽसौ सौमित्रिः प्राह सारथिम् ॥ ६३ ॥
चोदयाश्वान् कशाघातैर्यथा शीघ्रं प्रयान्ति हि ।

तब रुँधे हुए कण्ठसे लक्ष्मणजीने सारथिसे कहा—'सूत ! चाबुक मारकर घोड़ोंको हाँको, जिससे ये शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ें' ॥ ६३½ ॥

जैमिनिरुवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वोवाच सूतोऽथ लक्ष्मणम् ॥ ६४ ॥
अहमश्वमनो वेद्मि यथावत् पुरुषर्षभ ।
चलाचलप्रोथतया वक्तुकामा इमे हयाः ॥ ६५ ॥
शीघ्रं हि यदि गच्छेम ततो नश्चरणैर्मही ।
दूयेत सीतादुःखेन दुःखिताऽऽदौ विशेषतः ॥ ६६ ॥
संग्रामे नो गतिः श्लाघ्या नेदृशे कुत्सिते पथि ।
इत्येवं हृदि मन्यन्ते वाजिनो भरतानुज ।
तथापि प्रेरयाम्यद्य पश्य मे हस्तलाघवम् ॥ ६७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! लक्ष्मणजीकी वह बात सुनकर सारथि उनसे कहने लगा—'पुरुषश्रेष्ठ! मुझे इन घोड़ोंकी मनोदशाका पूर्ण ज्ञान है । ये घोड़े अपने नथुनोंको हिलाकर यह कहना चाहते हैं कि एक तो यह पृथ्वी पहले ही सीताके दुःखसे विशेष दुखी है, दूसरे इस समय यदि हमलोग वेग-पूर्वक चलेंगे तो हमारे टापोंके आघातसे यह और भी पीडित होगी । हमारी चालकी प्रशंसा तो संग्रामभूमिमें ही होती है, ऐसे निन्दित मार्गपर चलनेमें नहीं । भरतजीके छोटे भैया ! घोड़े अपने हृदयमें ऐसा ही समझ रहे हैं तो भी मैं अभी इन्हें आगे बढ़ाता हूँ । आप मेरे हाथोंकी फुर्ती देखिये'॥६४–६७॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं स सारथिः
पाण्योस्तलेनाभिजघान कंधराम् ।
रश्मीन् समादाय कशामुदीरयन्
प्राचोदयत् तीव्रयान् हयांस्तदा ॥ ६८ ॥

ऐसी बात कहकर सारथिने अपने हाथोंकी हथेलियोंसे घोड़ोंकी गरदनको थपथपाया और बागडोर हाथमें लेकर चाबुकको लपलपाते हुए उन शीघ्रगामी घोड़ोंको वेगपूर्वक आगे बढ़ाया ॥ ६८ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने लक्ष्मणप्रस्थानं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें लक्ष्मणका प्रस्थाननामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—लक्ष्मणका सीताजीको गङ्गाके उस पार वनमें छोड़कर लौटना, सीताकी मूर्च्छा और पुनः उठकर विलाप करना, वाल्मीकिजीका आगमन और उनका सीताजीको देखना

जैमिनिरुवाच

गच्छन्तीं तां समालोक्य सीतां पद्मनिभाननाम् ।
अयोध्यातीवदुःखेन व्यथिता वातचञ्चलैः ॥ १ ॥
ध्वजानां पल्लवैरेनां वारयन्तीव दृश्यते ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! कमल-सरीखे कोमल एवं सुन्दर मुखवाली सीताजीको जाती देखकर अयोध्यानगरी अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो उठी, इसलिये उस समय वह वायुके झोंकेसे फहराती हुई ध्वजाओंकी पताकाओंद्वारा उन्हें जानेसे मना करती हुई-सी दीख रही थी ॥ १½ ॥

ततस्तेन रथेनासौ गच्छन्ती जानकी पथि ॥ २ ॥
ददर्श दुर्निमित्तानि घोराणि सुबहून्यपि ।

तदनन्तर उस रथपर सवार होकर जाती हुई जानकीजीने मार्गमें बहुत-से भयंकर अपशकुन भी देखे ॥ २½ ॥

शिवा सम्मुखमागत्य व्यरावीद् भैरवं यथा ॥ ३ ॥
हरिणा मार्गमुल्लङ्घ्य प्रधावन्ति स्म सर्वशः ।
स्फुरति स्म सतीनेत्रं दक्षिणं पुरुषर्षभ ॥ ४ ॥

पुरुषश्रेष्ठ जनमेजय ! उस समय एक गीदड़ी सीताजीके सम्मुख आकर भयंकर स्वरसे रोने लगी । मृगोंके समूह रास्ता काटकर सब ओर भागने लगे और सती सीताका दाहिना नेत्र फड़कने लगा ॥ ३-४ ॥

जैमिनिरुवाच

ततस्तु विपरीतानि दुश्चिह्नानि विलोक्य सा ।
विस्मिता जानकी वीरं लक्ष्मणं प्रत्यवोचत ॥ ५ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर इन विपरीत अपशकुनोंको देखकर जानकीजी आश्चर्यचकित हो गयीं और फिर वीरवर लक्ष्मणसे बोलीं—॥ ५ ॥

पश्य लक्ष्मण चिह्नानि शिवा गोमायवो मृगाः ।
मार्गमावृत्य तिष्ठन्ति रुदन्ति भयसूचकाः ॥ ६ ॥
परं स्वस्त्यस्तु रामाय कौसल्याहर्षकारिणे ।
तस्य बाह्वोर्बलं भूयादायुष्यं परिवर्धताम् ॥ ७ ॥

'लक्ष्मण ! इन अपशकुनोंकी ओर तो देखो, ये भयकी सूचना देनेवाले गीदड़, गीदड़ियाँ तथा मृग मार्ग रोककर खड़े हो जाते हैं और रोने लगते हैं । अतः कौसल्याको आनन्द देनेवाले श्रीरामका परम मङ्गल हो, उनकी भुजाओंके बलकी वृद्धि हो और उनकी आयु बढ़े ॥ ६-७ ॥

येन रामेण घोराणि रक्षोवृन्दानि भूतले ।
पातितानि शरैस्तीक्ष्णैः शुभं तस्यास्तु सर्वदा ॥ ८ ॥

'जिन श्रीरामजीने अपने तीखे बाणोंसे भयंकर राक्षसोंके दलोंको धराशायी कर दिया था, उनका सर्वदा कल्याण हो ॥

खरश्च दूषणो येन त्रिशिरा यमसादनम् ।
प्रापिता वै जनस्थाने स राज्यं कुरुतां ध्रुवम् ॥ ९ ॥

'जिन्होंने जनस्थानमें खर-दूषण और त्रिशिराको मारकर यमलोक भेज दिया, वे अटल होकर राज्य-शासन करें ॥९॥

अगाधो गाधतां नीतो वानरैर्येन सागरः ।
विभीषणो भयात् त्रातः सोऽस्त्वयोध्यापतिः सुखी १०

'जिन्होंने वानरोंकी सहायतासे अगाध समुद्रको पार करने योग्य बना दिया और रावणके भयसे विभीषणकी रक्षा की, वे अयोध्यानरेश श्रीराम सुखी हों ॥ १० ॥

महाबलौ रावणकुम्भकर्णौ
लङ्कापती तौ प्रथितौ पृथिव्याम् ।
पापस्य साक्षादिव मूर्तिभाजौ
भिन्नौ रणे येन शरैः सुतीक्ष्णैः ॥ ११ ॥
मन्दोदरीनेत्रजलैश्च लङ्का-
मभ्युक्ष्य वीरं हरिसूनुमग्रे ।
यः प्रेरयामास मदर्थमेव
स राघवो विश्वसुखप्रदोऽस्तु ॥ १२ ॥

'जिन्होंने समरभूमिमें महाबली रावण और कुम्भकर्णको, जो भूतलपर लंकापतिके नामसे विख्यात थे तथा जो मूर्तिमान् साक्षात् कालके समान थे, अपने अत्यन्त पैने बाणोंसे विदीर्ण कर डाला तथा जिन्होंने मन्दोदरीके आँसुओंसे लंकाको सींचकर मेरे लिये वीरवर हनुमान्‌को सबसे पहले भेजा था, वे रघुनाथ-जी सारे विश्वको सुख प्रदान करनेवाले हों' ॥ ११-१२ ॥

एवं वदन्ती जनकात्मजासौ
प्रायात् त्रिमार्गां जनपापहन्त्रीम् ।
कल्लोलजालं गगने वितन्वतीं
पयोऽतिगौरं दधतीं पवित्रम् ॥ १३ ॥
जम्ब्वाम्रचम्पककुलिन्दपटाश्मसार-
खर्जूरपूगकदलीपनसाढ्यतीराम् ।
द्राक्षाफलस्तबकशोभितमण्डपालीं
सौवर्णकेतकवनावलिमुद्वहन्तीम् ॥ १४ ॥

यों कहती हुई जनकनन्दिनी सीताजी जनताके पापोंका विनाश करनेवाली त्रिपथगामिनी गङ्गाजीके तटपर आ पहुँचीं । उस समय गङ्गाजी अपने तरङ्ग-समूहोंको उछालकर आकाशमें फैला रही थीं, उनमें अत्यन्त उज्ज्वल जल बह रहा था, उनके तटपर जामुन, आम, चम्पा, चमेली, पट, अश्मसार, खजूर, सुपारी, केला और कटहलके वृक्षोंकी बहुतायत थी, अंगूरके गुच्छोंसे सुशोभित मण्डपोंकी कतार लगी हुई थी तथा सुनहरे केवड़ेका तो मानो जंगल ही लगा हुआ था ॥ १३-१४ ॥

तां देवलोकतटिनीं प्रसमीक्ष्य सीता
दृष्टा बभूव सफलं मम जन्म चैतत्।
रामस्य कीर्तिमिव शुभ्रतमां प्रवाहैः
पापानि सर्वजगतः खलु नाशयन्तीम्॥१५॥

जो श्रीरामकी निर्मल कीर्तिके समान थीं तथा अपनी जलधारासे सम्पूर्ण जगत्के पापोंका विनाश कर रही थीं, उन देवनदी गङ्गाको देखकर सीताजी अत्यन्त प्रसन्न हुई और उन्होंने अपना जन्म सफल माना॥ १५ ॥

जैमिनिरुवाच

लक्ष्मणस्तु रथात् तस्मादवतीर्य यथा भुवम्।
नावं नाविकसंयुक्तामारुरोह तया सह ॥ १६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! वहाँ लक्ष्मणजी उस रथसे पृथ्वीपर उतर पड़े और सीताजीको साथ लेकर एक नौकापर जा चढ़े, जिसपर खेनेवाले मल्लाह भी बैठे थे ॥ १६ ॥

गङ्गायास्तटमासाद्य परं भयविवर्धनम्।
अवातरत् ततः सीता नावो लक्ष्मण एव च ॥ १७ ॥

तदनन्तर भयकी वृद्धि करनेवाले गङ्गाजीके दूसरे तटपर पहुँचकर सीता और लक्ष्मण उस नौकासे उतर पड़े ॥ १७ ॥

सौमित्रिर्जानकी चापि सस्नतुर्जाह्नवीजले।
परिधाय ततो वस्त्रे जग्मतुर्वनगह्वरम् ॥ १८ ॥
यस्मिन् धवाश्च खदिरा धात्र्यो बदरिकास्तथा।
बकुलाः पिप्पलाः शुष्काः कोटरैश्चोपलक्षिताः ॥ १९ ॥
कुशानां कण्टकास्तीक्ष्णास्तथा गोक्षुरकादयः।
निम्बाश्च बहवः सन्ति क्रूराः पक्षिगणास्तथा ॥ २० ॥
जीर्णबोधिद्रुमस्थाश्च काकाः क्रेङ्कारकारिणः।
तेषां कोटरमध्यस्थाः सर्पाः फूत्कारकारिणः ॥ २१ ॥
चित्तकारण्यमहिषाः सूकराः स्थूलदंष्ट्रिणः।
कृष्णाङ्गा ऊर्ध्वपुच्छाश्च वृश्चिका बहवस्तथा ॥ २२ ॥

वहाँ लक्ष्मण और सीता—दोनोंने गङ्गाजीके जलमें स्नान किया और शुद्ध वस्त्र पहिनकर ऐसे घने जंगलमें प्रविष्ट हुए, जिसमें धव, खैर, आँवले, बेर, मौलसिरी, कोटरोंसे ही उपलक्षित होनेवाले सूखे पीपल, कुशोंके तीखे काँटे, गोखुर और बहुत-से नीमके वृक्ष थे। जहाँ क्रूर पक्षियोंका दल निवास करता था। पुराने पीपलके वृक्षपर बैठकर कौए काँव-काँव कर रहे थे और उनके कोटरोंमें रहनेवाले सर्प फुफकार मार रहे थे। जहाँ चीते, जंगली भैंसे, स्थूल दाढ़ोंवाले सूअर तथा पूँछ (डंक) ऊपर उठाये हुए बहुत-से काले-काले बिच्छू थे॥ १८–२२॥

व्याघ्रा मृगगणं धर्तुं निश्चला योगिनो यथा।
बिडाला मूषकबिलं समाश्रित्य खनन्ति वै ॥ २३ ॥

व्याघ्र मृगोंको पकड़नेके लिये योगियोंकी भाँति निश्चल होकर ध्यान लगाये बैठे थे। बिलाव चूहोंके बिलोंपर बैठकर उसे खोद रहे थे ॥ २३ ॥

तथाविधं वनं दृष्ट्वा सीता रोमाञ्चिता बभौ।
यथा रामस्य कीर्तिस्त्री कण्टकैः परिवेष्टिता ॥ २४ ॥
सौमित्रिमब्रवीद् भीता दुर्निमित्तानि पश्यती।

ऐसे भयावने वनको देखकर सीताजीके रोंगटे खड़े हो गये, जिससे उस समय उनकी ऐसी शोभा हुई मानो श्रीरामकी कीर्तिरूपी स्त्री काँटोंसे घिरकर शोभित हो रही हो। उन अपशकुनोंको देखकर भयभीत हुई सीताजी लक्ष्मणसे बोलीं॥

सीतोवाच

सौमित्रे न च पश्यामि मुनीनामाश्रमानहम्।
पवित्रवेषास्ताः साध्वीर्न पश्यामि तपस्विनीः ॥ २५ ॥

सीताजीने कहा—सुमित्रानन्दन ! मैं न तो यहाँ ऋषियोंके आश्रम देख रही हूँ और न मुझे पवित्र वेष धारण करनेवाली सती-साध्वी मुनिपत्नियाँ ही दीख रही हैं ॥ २५ ॥

मौञ्जीकृष्णाजिनभृतो द्वादशाब्दाञ्छिखाभृतः।
ऋषिपुत्रान् न पश्यामि मुनीन् वल्कलवाससः ॥२६॥

मूँजकी मेखला और कृष्णमृगचर्म धारण करनेवाले शिखाधारी द्वादशवर्षीय ऋषि-कुमार तथा वल्कलको ही वस्त्ररूपमें पहिननेवाले मुनि भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं॥

नाग्निहोत्रोत्थितो धूमो दृश्यते भरतानुज।
सर्वतो दृश्यते चायं दावः काष्ठतृणं दहन् ॥ २७ ॥

भरतानुज ! अग्निहोत्रसे उठा हुआ धुआँ भी नहीं दीख रहा है; अपितु सब ओरसे काष्ठ और घास-फूसको भस्मसात् करता हुआ यह दावानल प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है ॥२७॥

न वेदध्वनिरत्रास्ति श्रूयते पक्षिणां रुतम्।
कथं वेदध्वनिः श्राव्यस्त्यजन्त्या रघुनन्दनम् ॥ २८ ॥

यहाँ वेदध्वनि भी नहीं हो रही है, बल्कि पक्षियोंकी बोली सुनायी पड़ती है। (परंतु मेरे लिये यह उचित ही है; क्योंकि) जब मैंने रघुनन्दनका परित्याग कर दिया है, तब मुझे वेदध्वनि कैसे सुननेको मिलेगी ?॥ २८ ॥

मयासौ रघुनाथश्च त्यक्तो बुद्ध्या ततो न हि ।
दृश्यन्ते मुनिपत्न्यस्ता मुनिपुत्रा मुनीश्वराः ॥ २९ ॥
पवित्रैरेव दृश्यन्ते पवित्राश्रमवासिनः ।

मैं तो किसीसे सलाह न लेकर केवल अपनी ही बुद्धिसे श्रीरामको छोड़कर चली आयी हूँ, इसी कारण मुझे उन मुनि-पत्नियों, ऋषिकुमारों तथा मुनीश्वरोंका दर्शन नहीं हो रहा है; क्योंकि शुद्धाचारी जन ही पवित्र आश्रमवासियोंको देख सकते हैं॥

मया रामपराङ्मुख्या पवित्राणि कुरूपया ॥ ३० ॥
कथं तान्यग्निहोत्राणि दृश्यन्ते वनवासिनाम् ।

मैं तो श्रीरामसे विमुख रहनेवाली और कुरूपा हूँ, तब मुझे वनवासियोंके वे पवित्र अग्निहोत्र कैसे दीख पड़ेंगे ॥

जैमिनिरुवाच

वचांसि तानि सौमित्रिः शृण्वन्नश्रूण्यमुञ्चत ॥३१॥
अधः पश्यन्नुवाचासौ लक्ष्मणो विह्वलो बहु ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! सीताजीके उन वचनोंको सुनकर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हो गये । उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह चली । तब वे नीची दृष्टि किये हुए ही बोले ॥ ३१½ ॥

लक्ष्मण उवाच

सीते स आश्रमो दूरे गम्यतां वै शनैः शनैः ॥३२॥
रामेण त्वं परित्यक्ता सत्यं लोकापवादतः ।
तवापि दोहदो जातो द्रष्टुं भागीरथीं नदीम् ॥ ३३ ॥
मामसौ प्रेरयामास त्वां हातुं गहने वने ।
किं करोम्यवशो मातर्भ्रातुस्तस्य वचोहरः ॥ ३४ ॥

लक्ष्मणजीने कहा—सीते ! वह आश्रम अभी दूर है । धीरे-धीरे वहाँ चलना । परंतु सत्य बात तो यह है कि लोकापवादके कारण श्रीरामने तुम्हारा परित्याग कर दिया है । उधर तुम्हारे मनमें भी इस गर्भकालमें गङ्गा नदीका दर्शन करनेकी इच्छा उत्पन्न हो गयी । इसलिये उन्होंने तुम्हें घोर वनमें छोड़ आनेके लिये मुझे भेजा है । मातः ! मैं क्या करूँ ? मैं तो अपने उन ज्येष्ठ भ्राताकी आज्ञाका पालन करनेवाला हूँ, अतः परवश हूँ ॥ ३२—३४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा पपात धरणीतले ।
मूर्च्छिता जानकी तस्मिन्नम्बराद् रोहिणी यथा ॥३५॥

लक्ष्मणकी ऐसी बात सुनकर जानकीजी आकाशमण्डलसे गिरती हुई रोहिणीकी भाँति मूर्च्छित होकर वहाँ भूतलपर गिर पड़ीं ॥ ३५ ॥

छिन्नमूला यथा वल्ली गृष्टिः शूलाभिपीडिता ।
कुमारी सर्पदष्टेव तद्वत् सा भूतलेऽपतत् ॥ ३६ ॥

जैसे जड़से कटी हुई लता, प्रसवशूलसे पीडित प्रथम बार ब्यानेवाली गौ और सर्पसे डँसी हुई कुमारी कन्या तत्काल पृथ्वीपर गिर पड़ती है, उसी तरह सीताजी भूतलपर पड़ी थीं ॥ ३६ ॥

ततस्तां लक्ष्मणस्त्रस्तो वस्त्रान्तेनाभ्यवीजयत् ।
हस्तेनैकेन च च्छायां कुर्वंश्च मुखपङ्कजे ॥ ३७ ॥

सीताजीको मूर्च्छित देखकर लक्ष्मणजी उद्विग्न हो गये । उस समय वे एक हाथसे उनके मुखकमलपर छाया करते हुए दूसरे हाथद्वारा वस्त्रके छोरसे उनपर हवा करने लगे ॥

उवाच यदि रामस्य साक्षात् सेवा कृता मया ।
तर्हीयं जानकी शीघ्रं समुत्तिष्ठतु तादृशी ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने कहा—'यदि मैंने श्रीरामकी साक्षात् (सच्ची) सेवा की हो तो ये जानकीजी पहलेकी तरह (स्वस्थ-रूपमें) शीघ्र ही उठ बैठें' ॥ ३८ ॥

इत्येवं वदतस्तस्य चेतनां लभते स्म सा ।
नेत्रे समुन्मिलन्ती वै लक्ष्मणं ददृशे पुरः ॥ ३९ ॥

लक्ष्मणजीके ऐसा कहते ही सीताजीमें चेतना लौट आयी । उन्होंने आँखें खोलकर देखा तो लक्ष्मणको आगे खड़ा पाया ॥ ३९ ॥

अवोचत शनैरेव मां त्यक्त्वा गहने वने ।
कथं यास्यसि सौमित्रे जनस्थाने यथा पुरा ॥ ४० ॥

तब वे धीरेसे कहने लगीं—'सौमित्रे ! जैसे पहले तुमने मुझे जनस्थानमें अकेली छोड़ दिया था, उसी तरह इस गहन वनमें मुझे त्यागकर तुम कैसे जा सकोगे ? ॥ ४० ॥

देवराणां देवरस्त्वं मम पूज्यतमो मतः ।
त्वयाहं दण्डके त्राता विराधाङ्कगता पुरा ॥ ४१ ॥

'मैं तुम्हें अपने देवरोंमें सबसे श्रेष्ठ समझती हूँ । पहले वनवासके समय दण्डकारण्यमें जब राक्षस विराधने मुझे अपनी गोदमें उठा लिया था, उस समय तुमने मेरी रक्षा की थी ॥४१॥

फलमूलाम्बुभिः शुद्धैः परिचर्या कृता त्वया ।
पर्णशाला विचित्रास्ता मदर्थमुपकल्पिताः ॥ ४२ ॥

'उस समय तुमने शुद्ध फल, मूल और जल लाकर सब तरहसे मेरी सेवा की थी और तुम्हीं मेरे लिये जगह-जगह पर्णकुटी भी तैयार करते थे॥ ४२ ॥

इदानीं त्वदृते तास्ताः कः करिष्यति लक्ष्मण ।
अग्रतः पाति रामो मां पृष्ठतस्तु भवान् वने ॥ ४३ ॥

'लक्ष्मण ! इस समय तुम्हारे बिना कौन उन-उन सेवाओं-को करेगा ? उस समय वनमें आगेसे श्रीराम और पीछेसे तुम मेरी रक्षा करते थे ॥ ४३ ॥

हा दुःखं तु मया प्राप्तं रामो मां विजहौ यतः ।
अपराधादृते वीरो राजा राजीवलोचनः ॥ ४४ ॥

'हाय ! अब तो मैं बड़े कष्टमें पड़ गयी; क्योंकि कोई अपराध न होनेपर भी कमलनयन वीरवर महाराज रामने मेरा परित्याग कर दिया है ॥ ४४ ॥

मनसा कर्मणा वाचा नापराध्यामि तं पतिम् ।
सदा तच्चरणौ चित्ते चिन्तयामि मनोरमौ ॥ ४५ ॥

'फिर भी मैं मन, वचन और कर्मसे अपने उन पतिदेवका कोई अपराध नहीं करूँगी और सदा अपने मनमें उनके मनोहर चरणोंका ध्यान करती रहूँगी ॥ ४५ ॥

मुखं पद्मविशालाक्षं निर्मलं चन्द्रबिम्बवत् ।
चारुदंष्ट्रं श्मश्रुलं च कुण्डलाभ्यां सुशोभितम् ॥४६॥
मुक्तामाणिक्ययुक्तेन किरीटेनोपलक्षितम् ।
द्रक्ष्यामि रामस्य कथं पतिता गहने वने ॥ ४७ ॥

'परंतु इस घोर वनमें पड़ी हुई मैं श्रीरामके उस मुखका दर्शन कैसे कर पाऊँगी, जो कमल-सदृश विशाल नेत्रोंवाला, चन्द्रमण्डल-सदृश निर्मल, सुन्दर दाँतों और मूँछसे युक्त, कुण्डलोंसे सुशोभित और मुक्तामाणिक्यजटित मुकुटसे उप-लक्षित होनेवाला है ? ॥ ४६-४७ ॥

काकपक्षधरः पूर्वं रामः कौशिकसंयुतः ।
आगतो मिथिलां पूर्णस्त्वया सह महामते ॥ ४८ ॥
त्रैयम्बकं द्विधा चक्रे परिणेतुं च मां धनुः ।
मदर्थे वानरैः सार्द्धं सख्यं यो व्यदधाद् रघुः ॥ ४९ ॥
मद्वियोगे सति पुरा वृक्षानालिङ्गति स्म यः ।
स रामो व्यजहात् सीतां दैवमेव हि कारणम् ॥ ५० ॥

'महामते ! जो काकपक्ष (काकुल) धारण करनेवाले सर्वथा परिपूर्ण श्रीराम विश्वामित्रसहित तुम्हें साथ लेकर पहले मिथिलापुरीमें पधारे और वहाँ मेरे साथ विवाह करनेके लिये जिन्होंने शंकरजीके पिनाकको तोड़कर दो टुकड़े कर दिये, जिन रघुनाथजीने मेरे लिये वानरोंके साथ मित्रता जोड़ी तथा मेरे वियोगके समय जिन्होंने प्रेमविह्वल होकर वृक्षोंका आलिङ्गन किया था, उन्हीं श्रीरामने यदि मुझ सीताका परित्याग कर दिया तो इसमें दैवकी ही प्रेरणा है ॥ ४८–५० ॥

न दोषस्तस्य रामस्य ममायमिति चिन्तये ।
अथवा प्राक्तनानां हि विपाको मम कर्मणाम् ॥ ५१ ॥

'इसमें उन श्रीरामका कोई दोष नहीं है, सारा अपराध तो मेरा ही है; अथवा मैं तो ऐसा समझती हूँ कि यह मेरे पूर्वजन्मके कर्मोंका दुष्परिणाम है ॥ ५१ ॥

लक्ष्मण त्वं महाबाहो निर्दोषश्चैव राघवः ।
अयोध्यां गच्छ शीघ्रं त्वं यतो हि परवानसि ॥ ५२ ॥

'लक्ष्मण ! इसमें तुम तथा श्रीरघुनाथजी—दोनों ही निर्दोष हैं । महाबाहो ! अब तुम शीघ्र ही अयोध्याको लौट जाओ; क्योंकि तुम तो पराधीन हो ॥ ५२ ॥

यो गर्भे रक्षिता देवो यो वै लङ्काधिवासिनीम् ।
मां स वै रक्षिता चाद्य न दुःखं कर्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥

'जिन भगवान्ने गर्भमें मेरी रक्षा की थी तथा जो लंकामें रहते समय मेरे रक्षक थे, वे ही इस समय भी मेरी रक्षा कर लेंगे । अब तुम्हारा दुःख करना उचित नहीं है ॥५३॥

लक्ष्मण त्वं महाबाहो श्वश्रूं विज्ञापनं कुरु ।
युष्माकं चरणौ नित्यं चिन्तयामि वनेचरा ॥ ५४ ॥

'महाबाहु लक्ष्मण ! तुम जाकर मेरी ओरसे मेरी साससे निवेदन करना कि वनमें विचरती हुई भी मैं नित्य आपके चरणोंका ध्यान करती रहूँगी ॥ ५४ ॥

ससत्त्वाहं वने त्यक्ता रामेणापि विजानता ।
इत्येवं विलपन्ती सा जानकी गहने वने ॥ ५५ ॥
पुनरेव शुभाचारा लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।

'इस समय मैं गर्भवती हूँ । इस बातको श्रीराम भी जानते हैं; फिर भी उन्होंने मुझे वनमें त्याग दिया है ।' शुभ आचरण-वाली जानकीजी उस गहन वनमें यों विलाप करती हुई पुनः लक्ष्मणजीसे कहने लगीं ॥ ५५½ ॥

सीतोवाच

व्यापारेऽस्मिन् कथं रामस्त्वां कृपालुमयोजयत् ॥ ५६ ॥

प्रेरणीयः स सुग्रीवः कठिनो भ्रातृघातकः।
विभीषणो वा बलवान् रावणद्रोहकारकः ॥ ५७ ॥
यो यत्र विषये दक्षः स तत्र विनियोज्यते।
वृथा त्वां प्रेरयामास त्यागे मम रघूद्वहः।

सीताजी बोलीं—लक्ष्मण ! श्रीरामने तुम-जैसे दयालु-स्वभावको इस निर्दय कार्यमें कैसे लगा दिया ? उन्हें तो ऐसे अवसरपर भाईका वध करानेवाले कठोरहृदय सुग्रीवको अथवा अपने भाई रावणसे द्रोह करनेवाले बलवान् विभीषण-को भेजना चाहिये था; क्योंकि जो जिस विषयमें कुशल होता है, उसे उसी कार्यमें नियुक्त किया जाता है; अतः रघुनाथजीने मेरे परित्यागरूपी कार्यमें तुम्हें व्यर्थ ही लगाया ॥५६-५७½॥

गच्छ लक्ष्मण भद्रं ते स्वां पुरीं रामपालिताम् ॥ ५८ ॥
मार्गे क्षेमं भवतु ते भ्राता ते कुप्यते रघुः।

लक्ष्मण ! तुम्हारा कल्याण हो । अब तुम श्रीरामद्वारा सुरक्षित अपनी अयोध्यापुरीको लौट जाओ; अन्यथा देर होने-पर तुम्हारे भाई रघुनाथजी रुष्ट हो जायँगे । जाओ, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो ॥ ५८½ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा सौमित्रिर्दुःखितो भृशम्॥५९॥
प्रदक्षिणीकृत्य तदा नमश्चक्रेऽप्यवाङ्मुखः।
गच्छन्नुवाच सौमित्रिस्त्वां मातर्वनदेवताः ॥ ६० ॥
रक्षन्तु विपिने चास्मिन्नेष गच्छामि तद्वशः।
निर्ययौ लक्ष्मणो वीरः पश्यंस्तां जनकात्मजाम् ॥६१॥
पादौ न चलतस्तस्य कृच्छ्रेण महता ययौ।

सीताजीका कथन सुनकर उस समय लक्ष्मणको महान् कष्ट हुआ । उन्होंने नीचे मुख किये हुए ही उनकी परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया और फिर चलनेके लिये उद्यत हो-कर बोले—'मातः ! इस वनमें वनदेवता आपकी रक्षा करें । रघुनाथका वशवर्ती मैं अब चलता हूँ ।' यों कहकर शूरवीर लक्ष्मण जानकीजीकी ओर निहारते हुए चल पड़े; परंतु उनके पैर आगेको उठते ही न थे । वे बड़ी कठिनाईसे आगे बढ़े ॥ ५९–६१½ ॥

पश्यती जानकी मूर्तिं लक्ष्मणस्यापि निश्चला ॥ ६२ ॥
न ददर्श तदा तं तु निपपात धरातले।
मूर्च्छिता जानकी तत्र मुहूर्तं स्मावतिष्ठति ॥ ६३ ॥

इधर जानकीजी भी ठगी-सी होकर लक्ष्मणकी मूर्तिकी ओर देखती रहीं । जब वे आँखोंसे ओझल हो गये, तब सीताजी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और दो घड़ीतक वहाँ उसी अवस्थामें पड़ी रहीं ॥ ६२-६३ ॥

अथैत्य वीरः सौमित्रिस्तीर्त्वा भागीरथीं ययौ।
एकाकिनी वने बाला विललाप मृगी यथा ॥ ६४ ॥

तत्पश्चात् वीरवर लक्ष्मण गङ्गातटपर आये और गङ्गाजीको पारकर अयोध्याको चल दिये । (मूर्च्छा-भंग होनेपर) सुन्दरी सीता वनमें अपनेको अकेली पाकर मृगीकी भाँति विलाप करने लगीं—॥ ६४ ॥

हा पापं किं मया चीर्णं यत् त्यक्ता गहने वने।
जनकस्य कुले जाता दत्तास्मि राघवे पुरा ॥ ६५ ॥
दिशोऽवलोकयामास शून्याश्च विदिशस्तथा।
आगमिष्यति चैवायं लक्ष्मणोऽपि हसेच्च किम् ॥ ६६ ॥
पुनर्मूर्च्छामवाप्यासौ जानकी भयविह्वला।

'हाय ! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिसके फलस्वरूप मैं इस घोर वनमें त्याग दी गयी ? मैं महाराज जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हूँ और रघुवंशी श्रीरामके साथ मेरा विवाह हुआ है ।' ऐसा कहकर जब उन्होंने दिशाओं और विदिशाओंकी ओर दृष्टिपात किया, तब वे सभी सूनी दिखायी पड़ीं । (तब वे मनमें विचारने लगीं कि) क्या वे लक्ष्मण पुनः लौट आयेंगे ? क्या उन्होंने मेरे साथ परिहास किया है ? तदनन्तर भयसे व्याकुल होकर जानकीजी पुनः मूर्च्छित हो गयीं ॥ ६५-६६½ ॥

तद्दुःखदुःखिता हंसा रुदन्ति क्रूरनिस्वनम् ॥ ६७ ॥
मृणालानि परित्यज्य तदद्भुतमिवाभवत्।

तब सीताजीके दुःखसे दुःखित होकर हंस कमल-नालका परित्याग करके क्रूर स्वरसे चीत्कार करने लगे । यह एक अद्भुत-सी घटना हुई ॥ ६७½ ॥

तृणाङ्कुरं विहायाशु सीतां पश्यन्ति तादृशीम् ॥ ६८॥
एणशावा हरिण्यश्च कृष्णसारा विशेषतः।

मृगशावक, हरिणियाँ तथा विशेषकर कृष्णसार मृग शीघ्र ही तृण चरना छोड़कर मूर्च्छित पड़ी हुई सीताजीकी ओर देखने लगे ॥ ६८½ ॥

मयूरा नृत्यमुत्सृज्य तस्मिन् काले प्रधाविताः ॥ ६९ ॥
शकुन्ता विजहुर्भक्ष्यं छायां पक्षैः स्म कुर्वते।
जलस्थाः पक्षिणश्चाभिसिषिचुर्जनकात्मजाम् ॥ ७० ॥

उस समय मयूर नाचना छोड़कर सीताजीकी ओर दौड़ पड़े। पक्षियोंने चारा चुगना बंद कर दिया और वे अपने डैने फैलाकर जानकीजीपर छाया करने लगे तथा जलमें रहनेवाले पक्षी अपने पंखोंके जलसे उन्हें सींचने लगे ॥६९-७०॥

चमर्यः पुच्छचमरैर्वीजयन्ति स्म जानकीम्।
अथ भागीरथीतीरे स्नातः पुष्पाण्युपाहरन् ॥ ७१ ॥
अर्चयामास पवनः सीतां सौगन्ध्यसंयुतः।
तदा स्थिता विशालाक्षी राम रामेति भाषिणी ॥७२॥

चमरी गायें अपने पूँछरूपी चवँरोंसे उनपर हवा करने लगीं। पवनदेव गङ्गाजीमें स्नान करके तटपर पड़े हुए पुष्पोंको अपने साथ उड़ाकर उनकी सुगन्धसे सुवासित हो सीताजीका पूजन-सत्कार करने लगे। तब विशाल नेत्रोंवाली सीताजी 'राम-राम' कहती हुई उठ बैठीं ॥ ७१-७२ ॥

विचेष्टन्ती मुक्तकेशा भूमौ पांसुभिरावृता।
यदि प्राणानिमान् हास्ये भ्रूणहत्या भविष्यति ॥ ७३ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि को मे त्राता भविष्यति।
इतस्ततो धावमाना स्खलन्ती च पदे पदे।
कुशानां कण्टकास्तीक्ष्णाः पादयोराचरन् व्यथाम् ७४

उस समय पृथ्वीपर छटपटानेके कारण उनके केश खुल गये थे और वे धूलमें सन गयी थीं। (फिर वे विचारने लगीं—) 'यदि मैं इन प्राणोंको छोड़ दूँ तो मुझे भ्रूणहत्याका पाप लगेगा। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कौन मेरा रक्षक होगा?' यों सोचती हुई वे इधर-उधर दौड़ रही थीं और पग-पगपर लड़खड़ाकर गिर पड़ती थीं। कुशोंके तीखे काँटे उनके दोनों पैरोंमें चुभकर पीड़ा दे रहे थे ॥ ७३-७४ ॥

सुस्रुवे रुधिरं पद्भ्यां वैदेह्या भरतर्षभ।
एवं दुःखातुरा बाला वर्तते स्म तदा वने ॥ ७ ॥

भरतर्षभ! उस समय जानकीजीके दोनों चरणोंसे खून टपक रहा था। इस प्रकार दुःखसे आतुर हुई सुन्दरी सीता उस समय वनमें भटक रही थीं ॥ ७५ ॥

तावत् स धीमान् बहुभिः समावृतो
वाल्मीकिरुग्रैश्च तपोभिरीडितः।
यूपानथ च्छेदयितुं मखार्थं
समागतस्तां ददृशे विषण्णाम् ॥ ७६ ॥

तबतक उग्र तपस्या करनेवाले तपस्वियोंद्वारा सम्मानित परम बुद्धिसम्पन्न महर्षि वाल्मीकि अपने बहुत-से शिष्योंके साथ यज्ञके निमित्त यूप-काष्ठ काटनेके लिये उधर ही आ निकले। तब उनकी दृष्टि उस दुखिया सीतापर पड़ी ॥ ७६ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने वाल्मीकिसमागमो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें वाल्मीकिका आगमननामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान सीताका महर्षि वाल्मीकिके साथ आश्रमपर जाना, वहाँ दो पुत्रोंको जन्म देना, वाल्मीकि मुनिका उन पुत्रोंका संस्कार करके उन्हें साङ्ग वेद तथा रामचरित्रकी शिक्षा प्रदान करना, मुनियोंद्वारा उन्हें अस्त्रदान, श्रीरामका अश्वमेध यज्ञके लिये घोड़ा छोड़ना, आश्रममें जानेपर लवद्वारा उसका पकड़ा जाना

जैमिनिरुवाच

वाल्मीकिस्तां ततो दृष्ट्वा विषण्णां दीनचेतसम्।
तपःसिद्धिमिव क्लिन्नां स्वकीयामनवेक्षणात् ॥ १ ॥
उवाच का त्वं कल्याणि पुत्री कस्य परिग्रहः।
कस्मादस्मिन् वने शून्ये तिष्ठसे विस्तराद् वद ॥ २ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तदनन्तर महर्षि वाल्मीकिने उपेक्षाके कारण क्षीण हुई अपनी तपःसिद्धिकी भाँति सीताजीको दीन-दुखी तथा विषादग्रस्त देखकर उनसे पूछा—'कल्याणि! तुम कौन हो? किसकी कन्या एवं किसकी पत्नी हो? और इस निर्जन वनमें किसलिये आयी हो? यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बताओ' ॥ १-२ ॥

ततः सीता नमस्कृत्य प्रोवाचातीव दुःखिता।
सुता वै जनकस्याहं स्नुषा दशरथस्य च ॥ ३ ॥

तब अत्यन्त दुःखकी मारी हुई सीताजी उन्हें प्रणाम करके कहने लगीं—'मुने! मैं राजा जनककी पुत्री और महाराज दशरथकी पुत्रवधू हूँ ॥ ३ ॥

रामस्य भार्या भूदेव सदा पतिपरायणा।
त्यक्तास्मि तेन रामेण न जाने केन हेतुना ॥ ४ ॥
वाल्मीकिस्तां समाश्वास्य प्रोवाच वचनं शुभम्।

'सदा पति-सेवामें तत्पर रहनेवाली श्रीरामकी पत्नी हूँ। भूदेव! न जाने किस कारणसे उन श्रीरामने मेरा परित्याग कर दिया है।' यह सुनकर महर्षि वाल्मीकि सीताजीको भली-भाँति आश्वासन देकर शुभ वचन बोले ॥ ४½ ॥

वाल्मीकिरुवाच

सीते लभस्व पुत्रौ द्वौ मा शोकं कुरु सुव्रते।
वाल्मीकिरिति नामाहं मुनिर्जनकपूजितः ॥ ५ ॥
प्राप्ताऽऽश्रमं मे रुचिरं पत्रपुष्पफलावृतम्।
पर्णशालां विधास्यामि त्वदर्थं वरवर्णिनि ॥ ६ ॥
यत्र प्रसूतिर्भविता रुचिरा तव जानकि।

महर्षि वाल्मीकिने कहा—सुव्रते! मैं वही वाल्मीकि नामक ऋषि हूँ, जिनका तुम्हारे पिता जनक आदर-सत्कार करते थे। अब तुम मेरे पत्र, पुष्प और फलसे सम्पन्न रमणीय आश्रममें आ गयी हो, अतः शोक करना छोड़ दो। सीते! यहाँ तुम्हें दो पुत्रोंकी प्राप्ति होगी। सुन्दर वर्णवाली जानकि! मैं तुम्हारे लिये पर्णकुटीकी व्यवस्था कर दूँगा, जिसमें तुम्हारी सुन्दर संतान उत्पन्न होगी ॥ ५-६½ ॥

मुनेस्तद् वचनं श्रुत्वा हर्षिता जनकात्मजा ॥ ७ ॥
निदाघार्ता मयूरीव श्रुत्वा वै घननिस्वनम्।
बाढमित्येवमुक्त्वा सा प्रययौ पृष्ठतो मुनेः ॥ ८ ॥

तब जैसे ग्रीष्म ऋतुके तापसे संतप्त हुई मयूरी बादलोंकी गर्जना सुनकर प्रसन्न होती है, उसी तरह मुनिका वह वचन सुनकर जानकी आनन्दमग्न हो गयीं और 'बहुत अच्छा' यों कहकर मुनिके पीछे-पीछे चलने लगीं ॥ ७-८ ॥

तया सह महाभागो वाल्मीकिः प्राप चाश्रमम्।
यस्मिन् व्याघ्राश्च सिंहाश्च गोभिः क्रीडन्ति हर्षिताः ९

तत्पश्चात् महाभाग वाल्मीकिजी सीताको साथ लिये हुए अपने उस आश्रममें जा पहुँचे, जहाँ व्याघ्र और सिंह हर्षपूर्वक गौओंके साथ क्रीडा करते थे ॥ ९ ॥

बिडालास्येषु लीयन्ते मूषकाः स्वबिले यथा।
नकुला उरगाश्चैव मयूरा यत्र रेमिरे ॥ १० ॥

चूहे बिलावोंके मुखोंमें उसी प्रकार जा छिपते थे, मानो अपने बिलमें जा रहे हों। जहाँ नेवले, सर्प और मयूर एक साथ खेलते थे ॥ १० ॥

रमन्ते स्म मृगैः सार्धं चित्रकास्त्यक्तमत्सराः।
सरसीषु विचित्रासु बको मत्स्यान्न हन्ति हि ॥ ११ ॥

चीते मत्सरताका त्याग करके मृगोंके साथ विचरते थे। मनोहर बावड़ियोंमें बगुले मछलियोंका वध नहीं करते थे ॥ ११ ॥

सा चैनमाश्रमं दृष्ट्वा वाल्मीकेस्तांस्तपोधनान्।
ऋषिभार्याः शुभाचारा ऋषिपुत्रांश्च शोभनान्॥ १२ ॥
हर्षेण महताविष्टा नमश्चक्रे पुनः पुनः।
ताभिस्तैश्च प्रयुक्ताशीर्जानकी शुभलक्षणा ॥ १३ ॥

सीताजी महर्षि वाल्मीकिके उस आश्रमको, वहाँके निवासी तपस्वियोंको, शुभ आचरणवाली ऋषिपत्नियोंको तथा शोभायमान ऋषिकुमारोंको देखकर परम प्रसन्न हुईं और उन्होंने उन सबको बारंबार नमस्कार किया। तब उन ऋषियों, ऋषिकुमारों तथा ऋषिपत्नियोंने शुभलक्षणा जानकीको शुभाशीर्वाद दिया ॥ १२-१३ ॥

कल्पितां मुनिपुत्रैश्च पर्णशालामुपाविशत्।
दत्तानि मुनिपत्नीभिः फलानि बुभुजे पयः ॥ १४ ॥
पीत्वा सुनिर्मलं तस्यां शालायां सा स्म तिष्ठति।
नौति स्म चरणौ नित्यं वाल्मीकेः शृणुते कथाः ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् सीताजी मुनिकुमारोंद्वारा निर्मित एक पर्णकुटीमें बैठ गयीं। वहाँ उन्होंने मुनिपत्नियोंद्वारा दिये गये फलोंका भोजन किया और अत्यन्त निर्मल जल-पान करके वे उसी कुटियामें रहने लगीं। वे प्रतिदिन महर्षि वाल्मीकिके चरणोंमें प्रणाम करतीं और तरह-तरहकी कथाएँ सुना करती थीं ॥ १४-१५ ॥

एवं तस्मिन् वसन्त्याश्च सीताया ह्यगमन्नव।
मासा गर्भस्य वाल्मीकेराश्रमे फलितद्रुमे ॥ १६ ॥

इस प्रकार वाल्मीकि मुनिके उस फलोंसे लदे हुए वृक्षोंवाले आश्रममें निवास करती हुई सीताजीके गर्भके नौ मास व्यतीत हो गये ॥ १६ ॥

अतीते नवमे मासे जानकी सुषुवे यमौ ।
निशीथे सुमुहूर्ते च मुनिपत्न्यो विचक्षणाः ॥ १७ ॥
तत्रत्यमुपचारं तु कल्पयामासुरागताः ।
गायन्ति गीतं हर्षेण सीतेयं सुषुवे यमौ ॥ १८ ॥

तब नवाँ मास बीतनेपर जानकीने आधी रातके समय सुन्दर मुहूर्तमें दो जुड़वें पुत्रोंको जन्म दिया । उस समय प्रसूतकर्ममें कुशल मुनिपत्नियोंने आकर वहाँके सभी उपचार सम्पन्न किये। वे आनन्दमें भरकर गान कर रही थीं कि 'सखि री ! सीताने इस काल । जनम दिये दो जुड़वें लाल' ॥ १७-१८ ॥

अनयोः प्रभया वेश्म दीप्तमासीत् समन्ततः ।
दिशस्तु विमला जाता ववौ वातोऽतिसौरभः ॥१९॥
प्रदक्षिणार्चिस्तत्रासौ व्यशोभत हुताशनः ।
अतः शिष्याः प्रधावन्ति वाल्मीकिं प्रति शंसितुम् ॥२०॥

उन दोनों शिशुओंकी अङ्गकान्तिसे वह कुटिया चारों ओरसे प्रकाशित हो उठी । दिशाएँ निर्मल हो गयीं । अत्यन्त सुगन्धित वायु चलने लगी । वहाँ अग्निदेव भी अपनी ज्वाला-ओंको दक्षिणावर्त फैलाते हुए सुशोभित होने लगे । तब शिष्यगण महर्षि वाल्मीकिको इसकी सूचना देनेके लिये दौड़े ॥ १९-२० ॥

असूत पुत्रौ भो ब्रह्मन् जानकी विस्मयो महान् ।
ततो मुनिः कुशान् रम्याँल्लवान् मुष्टिमितान् दधत् २१
आगतो यत्र तौ बालौ दृष्ट्वा हर्षसमन्वितः ।
तावभ्यषिञ्चद् दर्भैश्च लवैः सार्धं मुनिस्तदा ॥ २२ ॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने कहा—'भो ब्रह्मन् ! महान् आश्चर्यकी बात हुई कि जानकीने दो पुत्रोंको जन्म दिया है।' तब वाल्मीकि मुनि एक मुट्ठी सुन्दर कुश तथा (कुशोंका ही एक भेद) लव हाथमें लिये हुए उस स्थानपर आये, जहाँ वे दोनों बच्चे थे । उन्हें देखकर वे आनन्दमग्न हो गये । तत्पश्चात् मुनिने उन कुशों और लवोंके जलसे उन दोनों शिशुओंका अभिषेक किया ॥ २१-२२ ॥

तन्नामानौ मुनिश्चक्रे कुशो लव इति स्वयम् ।
दिने दिने वर्धमानौ चन्द्रसूर्याविवोदितौ ॥ २३ ॥

फिर स्वयं मुनिने ही उन दोनोंका 'कुश और लव' ऐसा नामकरण किया । वे दोनों शिशु उदित हुए सूर्य और चन्द्रमाकी भाँति प्रतिदिन बढ़ने लगे ॥ २३ ॥

जातकर्मादिकं सर्वं चक्रे स ऋषिसत्तमः ।
द्वादशाब्दे ततो मौञ्जीबन्धनं व्यदधात् तयोः ॥ २४ ॥

उन मुनिश्रेष्ठने उन दोनोंके जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये । तत्पश्चात् बारहवाँ वर्ष आनेपर उन्होंने उनका मौञ्जीबन्धन (यज्ञोपवीत) संस्कार भी पूर्ण किया ॥ २४ ॥

प्रार्थयित्वा कामधेनुं वसिष्ठान्मुनिपुङ्गवः ।
वाल्मीकिर्भोजयामास ब्राह्मणान् वनवासिनः ॥ २५ ॥

उस अवसरपर मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि वसिष्ठजीसे उनकी कामधेनु गौको माँग लाये और उसके सहारेसे वे वनवासी ब्राह्मणोंको भोजन कराने लगे ॥ २५ ॥

कामधेनोः सकाशाद्धि भक्तः प्रादुरभूच्छुभः ।
सूपं विचित्रं मुद्गानां शाकाश्च विविधा अपि ॥ २६ ॥

कामधेनुकी कृपासे वहाँ उज्ज्वल वर्णके भात, विचित्र ढंगसे बनी हुई मूँगकी दाल और अनेक प्रकारके शाक प्रकट हो गये ॥ २६ ॥

चन्द्रबिम्बसमा जाताः पूपाः शतसहस्रशः ।
पूरिका घृतपक्वाश्च शतच्छिद्रा उदुम्बराः ॥ २७ ॥

घीमें पके हुए चन्द्रमण्डलके समान सैकड़ों-हजारों पूए, पूरियाँ और सैकड़ों छिद्रोंवाले मिष्टान्न तथा गूलरके आकारकी मिठाइयाँ भी प्रकट हुईं ॥ २७ ॥

फलान्यमृतकल्पानि प्रादुर्भूतानि धेनुतः ।
करञ्जिका मोदकाश्च तथा वै सूत्रकोद्भवाः ॥ २८ ॥
निस्तुषाणां तिलानां च नारिकेलसमुद्भवाः ।
चारबीजोद्भवा वृक्षनिर्यासकृतबन्धनाः ॥ २९ ॥

उस कामधेनुसे अमृत-तुल्य फल, करंजिका और अनेक प्रकारके मोदक भी प्रकट हुए । उन लड्डुओंमें कुछ तो सूत्रकसे बने हुए थे, कुछ भूसीरहित तिलके, कुछ नारियल-के, कुछ चारबीजके और कुछ वृक्षोंकी गोंदसे बँधे हुए थे२८-२९

फेणिकाश्चन्द्रबिम्बाभाः सहस्रपुटसंयुताः ।
पर्पटा माषसम्भूतास्तथा तण्डुलचूर्णजाः ॥ ३० ॥

उन भोज्य पदार्थोंमें सहस्रों पुटोंसे संयुक्त एवं चन्द्रबिम्ब-के समान उज्ज्वल फेणिकाएँ भी थीं । उड़द तथा चावलके चूर्णसे बने हुए पापड़ भी थे ॥ ३० ॥

एवंविधानि चान्नानि पक्वान्नानि ददाति गौः ।
तेन चान्नेन वाल्मीकिस्तर्पयामास तान् जनान् ॥ ३१ ॥

वह गौ ऐसे-ऐसे अन्न और पकवान प्रदान कर रही थी। उस अन्नसे महर्षि वाल्मीकिने उन सभी वनवासी मनुष्योंको तृप्त किया॥ ३१॥

ततः कृतोपनयनावागतौ द्वौ कुमारकौ।
अध्यैषातां शिशू वेदं साङ्गं वाल्मीकिनोदितम्॥ ३२॥

तदनन्तर जब उन दोनों कुमारोंका उपनयन-संस्कार सम्पन्न हो गया, तब वे बच्चे महर्षि वाल्मीकिके पास आये और उनके मुखसे अङ्गोंसहित वेदोंका अध्ययन करने लगे॥ ३२॥

तस्माद् रामचरित्रं तज्जगतुर्मधुरस्वनौ।
लवस्तालधरश्चासीद् वीणाहस्तः कुशो जगौ॥ ३३॥

फिर उन्हीं महर्षिसे रामचरित्रकी शिक्षा पाकर वे दोनों मधुर स्वरसे उसका गान करने लगे। उनमें लव ताल लगानेवाला था और कुश हाथमें वीणा लेकर गाता था॥ ३३॥

आलापैर्गगनं सर्वं व्याप्नुतां शृण्वतां मनः।
ततस्ते मुनयो हृष्टाः साधु साध्विति चाब्रुवन्॥ ३४॥

वे अपने मधुर आलापोंसे सम्पूर्ण आकाश तथा सुननेवालोंके मनको भी व्याप्त कर लेते थे। तब वे सभी मुनि प्रसन्न होकर उन्हें साधुवाद देने लगे॥ ३४॥

धनुषी प्रददौ धीमान् वाल्मीकिः सगुणे दृढे।
इषुधी चाक्षयौ रैभ्यस्ताभ्यां तस्य मुनेः सखा॥३५॥

तदनन्तर बुद्धिमान् वाल्मीकिजीने उन दोनों कुमारोंको प्रत्यञ्चासहित दो सुदृढ़ धनुष तथा उन मुनिके सखा महर्षि रैभ्यने दो अक्षय तरकस प्रदान किये॥ ३५॥

तपोधनास्ततः सर्वे ह्यस्त्रग्रामं तयोर्ददुः।
तपोबलेन ते सर्वे मुनयः प्रददुः शरान्॥ ३६॥

तत्पश्चात् सभी तपस्वियोंने उन दोनोंको अनेक प्रकारके अस्त्र दिये। उन सबने अपने तपोबलसे अभिमन्त्रित करके बहुत-से बाण भी दिये॥ ३६॥

किरीटकवचान्येके ददुः खड्गौ च चर्मणी।
एवं धनुर्धरौ वीरौ तनुत्राणभृतौ यमौ॥ ३७॥
काकपक्षधरौ तस्मिन्नाश्रमे चरतः स्म तौ।
सीतां शुश्रूषमाणौ तौ कन्दमूलफलैः शुभैः॥ ३८॥
पादसंवाहनैश्चापि परां प्रीतिं वितेनतुः।

किन्हींने किरीट और कवच समर्पित किये तो किसीने ढाल और तलवार दी। इस प्रकार काकपक्ष (काकुल) धारी वे दोनों यमज वीर कवच और धनुषसे सुसज्जित हो उस आश्रममें विचरने लगे॥ ३७½॥

वे दोनों सुन्दर कन्द-मूल और फल देकर तथा पाँव दबाकर भी सीताजीकी सेवा-शुश्रूषा करते हुए उनके मनमें परम प्रीतिका विस्तार करने लगे॥ ३८½॥

जैमिनिरुवाच

अयोध्यायां महाबाहुः पालयन् रघुवंशजः॥ ३९॥
न शर्म लेभे रामोऽसौ ब्रह्महत्याभिपीडितः।
अश्वमेधं क्रतुवरं कर्तुकामोऽप्यभूद् रघुः॥ ४०॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उधर रघुकुलनन्दन महाबाहु श्रीराम अयोध्यामें राज्यशासन करते रहे; परंतु (रावण-वधजनित) ब्रह्महत्यासे पीडित होनेके कारण उन्हें शान्ति नहीं मिली। तब उन रघुनाथजीके मनमें यज्ञश्रेष्ठ अश्वमेधका अनुष्ठान करनेकी इच्छा जाग्रत् हुई॥३९-४०॥

वसिष्ठं च समाहूय विश्वामित्रं च गालवम्।
वामदेवं सजाबालिमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४१॥

उस समय वे वसिष्ठ, विश्वामित्र, गालव, वामदेव और जाबालि ऋषिको बुलाकर उनसे निम्नाङ्कित वचन बोले—॥४१॥

राम उवाच

अश्वमेधं करिष्यामि कथ्यतां तस्य वै विधिः।
अश्वश्च कीदृशो भाव्यो दानं कीदृग् विधीयते।
किं मया चरणीयं स्याद् व्रतं तच्च निरूप्यताम्॥४२॥

श्रीरामने कहा—महर्षियो! मैं अश्वमेध-यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आपलोग उसकी विधि बतानेकी कृपा करें। उस यज्ञमें घोड़ा कैसा होना चाहिये? किस प्रकारका दान दिया जाता है तथा मुझे किस व्रतका पालन करना होगा? इसका निरूपण कीजिये॥ ४२॥

ततो वसिष्ठः कथयांबभूव
दुःखेन साध्यः किल यज्ञ एषः।
अश्वश्च भाव्यः कुमुदेन्दुवर्णः
पीतश्च पुच्छे मलिनश्च कर्णे॥ ४३॥

तब वसिष्ठजी कहने लगे—'रघुनन्दन! निश्चय ही यह यज्ञ दुःसाध्य है। इसमें घोड़ा ऐसा होना चाहिये, जिसका रंग कुमुद और चन्द्रमाके समान उज्ज्वल हो, पूँछ पीली हो और कान श्याम रंगके हों॥ ४३॥

स रक्षणीयोऽब्दमलं नृवीरै-
र्धृतः परैश्चापि विमोक्षणीयः।
आरम्भ एवास्य हि विप्रवर्याः
पूज्याः सहस्रं श्रुतिपारगाश्च ॥ ४४ ॥

उस अश्वकी एक वर्षतक शूरवीर पुरुषोंद्वारा रक्षा होनी चाहिये। यदि कहीं किसी शत्रुने उसे पकड़ लिया तो बलपूर्वक उसे मुक्त करना चाहिये। यज्ञके आरम्भमें ही हजारों वेद-पारगामी विप्रवरोंकी पूजा होनी चाहिये ॥ ४४ ॥

एको रथो वारण एक एव
दशाश्वमुख्याश्च सुवर्णभारः।
शतं गवां हैमविभूषितानां
प्रस्थश्च देयो वरमौक्तिकानाम् ॥ ४५ ॥
एकैकशो भृत्यचतुष्टयं च
कार्येषु दक्षं किल देयमत्र ॥ ४६ ॥

इसमें प्रत्येक ब्राह्मणको एक रथ, एक हाथी, दस उत्तम घोड़े, एक भार सोना, स्वर्णालंकारोंसे विभूषित सौ गायें और सेर भर बहुमूल्य मोती दक्षिणारूपमें देनी चाहिये तथा कार्य करनेमें निपुण चार-चार नौकर भी दिये जाते हैं ॥४५-४६॥

असिपत्रव्रतं राम कथं त्वं न विधास्यसि।
यज्ञकर्मणि वै भार्या द्वितीया सहधर्मिणी ॥ ४७ ॥
तया विरहितं राम विफलं परिकथ्यते।

राम ! इस यज्ञमें एक असिपत्र नामक व्रत किया जाता है, उसे तो आप किसी तरह भी नहीं कर सकेंगे; क्योंकि यज्ञकार्यमें सहायता देनेवाली धर्मपत्नी भी होनी चाहिये। राम ! पत्नीके बिना तो यह यज्ञ निष्फल बतलाया जाता है ॥

राम उवाच

सौवर्णी प्रतिमा कार्या जानकीसदृशी प्रभो।
तादृश्या सीतया सार्धं करिष्ये व्रतमुत्तमम् ॥ ४८ ॥

तब श्रीरामने कहा—प्रभो ! जानकीकी आकृति-सरीखी एक सोनेकी प्रतिमा तैयार करायी जाय। मैं उसी स्वर्ण-मयी सीताके साथ उस उत्तम व्रतका पालन करूँगा ॥ ४८ ॥

अश्वमेधसमारम्भः क्रियतां मुनिपुङ्गवैः।
अश्वशालासु रुचिरं शास्त्रोक्तैर्लक्षणैर्युतम् ॥ ४९ ॥
निरीक्ष्य वाजिनं मह्यं ततो दीक्षा प्रदीयताम्।

अब आप मुनिवरोंको साथ लेकर अश्वमेधयज्ञका आयोजन आरम्भ कीजिये और मेरी घुड़सालोंमें शास्त्रोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न उस मनोहर अश्वको देख लीजिये। तत्पश्चात् मुझे यज्ञकी दीक्षा दीजिये ॥ ४९½ ॥

तद्भाषितमुपश्रुत्य वसिष्ठो मुनिभिर्वृतः ॥ ५० ॥
वाजिशालासु धवलमश्वमाहारयन्नरैः।
गोक्षीरवर्णं मुखतः कुङ्कुमाभं सुकेसरम् ॥ ५१ ॥
एकतः श्यामकर्णं तं हयमालोक्य विस्मितः।
वसिष्ठो ब्राह्मणान् सर्वान् सहस्रं पर्यपूजयत् ॥ ५२ ॥

श्रीरामका कथन सुनकर मुनियोंसे घिरे हुए वसिष्ठजीने मनुष्योंको भेजकर घुड़सालोंमें उज्ज्वल वर्णके अश्वकी खोज करायी। तब वे एक ऐसे अश्वको ले आये, जिसका रंग गो-दुग्धके समान उज्ज्वल था, मुखकी आभा केसरकी-सी थी और अयाल बड़े सुन्दर थे। उसके कान एक ओरसे श्याम रंगके थे। उस अश्वको देखकर वसिष्ठजीको बड़ा विस्मय हुआ; फिर उन्होंने एक हजारकी संख्यामें उन सभी वेदपारङ्गत ब्राह्मणोंकी पूजा की ॥ ५०–५२ ॥

वस्त्रालंकरणैर्दिव्यैर्वाजिभिश्च मनोजवैः।
रथैश्च वारणैर्मत्तैः कलधौततरैः शुभैः ॥ ५३ ॥
दोग्ध्रीभिर्धेनुभिश्चैव पूजयामास तान् द्विजान्।
ततश्च दीक्षितो रामस्तादृश्या सीतया सह ॥ ५४ ॥

वसिष्ठजीने उन ब्राह्मणोंको दिव्य वस्त्र, अलंकार, मनके समान वेगशाली घोड़े, रथ, श्वेत वर्णके सुन्दर मदमत्त हाथी, दुधारू गायें प्रदान करके उनका आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात् उस स्वर्णमयी सीताके साथ श्रीराम यज्ञमें दीक्षित हुए ॥ ५३-५४ ॥

हयं तं पूजयामास चन्दनेन सुगन्धिना।
पुष्पैः स्रग्भिश्च चमरैः शोभितं रघुनन्दनः ॥ ५५ ॥

तब रघुनन्दनने पुष्पमालाओं और चँवरोंसे सुशोभित होने-वाले उस अश्वकी सुगन्धित चन्दनसे पूजा की ॥ ५५ ॥

भाले बद्ध्वा च सौवर्णं पत्रं तस्य हरेः पुनः।
तस्मिन् पत्रे विलिखितं रामो दशरथात्मजः ॥ ५६ ॥
एकवीराद्य कौसल्या तस्याः पुत्रो महाबलः।
तेन मुक्तं हरिवरं गृह्णातु बलवान् नृपः ॥ ५७ ॥
इत्यभिप्रायसहितं पत्रं भाले व्यशोभत।
शत्रुघ्नं चादिदेशाथ त्वया रक्ष्यस्तुरङ्गमः ॥ ५८ ॥

फिर उस अश्वके मस्तकपर स्वर्ण-पत्र बाँध दिया गया।

उस स्वर्ण-पत्रमें लिखा हुआ था कि 'इस समय एक कौसल्या ही वीरमाता हैं। उनके महाबली पुत्र दशरथनन्दन श्रीराम ही राजा हैं। उन्होंने इस उत्तम अश्वको छोड़ा है। यदि किसी राजामें बल हो तो वह इसे पकड़े।' ऐसे अभिप्रायसे युक्त वह पत्र घोड़ेके मस्तकपर शोभा पाने लगा। तदनन्तर शत्रुघ्नको आज्ञा दी गयी कि तुम इस अश्वकी रक्षामें जाओ॥

ततः स तुरगो मुक्तः पृष्ठतो लक्ष्मणानुजः।
अक्षौहिणीभिस्तिसृभिर्जगाम सहितो बली॥ ५९॥

तत्पश्चात् वह अश्व छोड़ दिया गया और उसके पीछे-पीछे महाबली शत्रुघ्न तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ चले॥

नानादेशान् व्यतिक्रम्य नगरोपवनानि च।
लीलया विचचाराशु शत्रुघ्नसहितो हयः॥ ६०॥

शत्रुघ्नद्वारा सुरक्षित वह अश्व शीघ्र ही अनेकों देशों, नगरों और उपवनोंको लाँघता हुआ लीलापूर्वक विचरण करने लगा॥ ६०॥

राजानस्तं हयं दृष्ट्वा नमश्चक्रुः पराङ्मुखाः।
ये शूरा बलवन्तश्च ते गृह्णन्ति हयोत्तमम्॥ ६१॥
तान् जित्वा बलवान् वीराञ्छत्रुघ्नोऽमोचयद्धयम्।

राजालोग उस अश्वको देखकर युद्धसे विमुख हो उसे नमस्कार करते थे; परंतु जो बलवान् शूरवीर नरेश थे, वे उस उत्तम अश्वको पकड़ लेते थे। तब बलवान् शत्रुघ्न उन वीरोंको पराजित करके उस घोड़ेको छुड़ा लेते थे॥ ६१½॥

ततः स तुरगः प्राप्तो वाल्मीकेराश्रमे शुभे॥ ६२॥
वाल्मीकिर्वरुणाहूतो मखार्थं तलमभ्यगात्।
आश्रमोपवनं रम्यं प्रविवेश तुरङ्गमः॥ ६३॥

तत्पश्चात् वह अश्व महर्षि वाल्मीकिके सुन्दर आश्रममें जा पहुँचा। उस समय वाल्मीकिजी यज्ञ-कार्यके लिये वरुणद्वारा बुलाये जानेपर पाताललोकमें गये हुए थे। इधर उस अश्वने आश्रमके रमणीय उपवनमें प्रवेश किया॥ ६२-६३॥

दाडिमाः फलिता यत्र चूताः पल्लविनो नवाः।
मुनिद्रुमाः पुष्पवन्तो रात्र्यः किं चन्द्रिकाञ्चिताः ६४

उस उपवनमें अनारके वृक्ष फलोंसे लदे हुए थे। आमके नये-नये पौधोंपर सुन्दर पल्लव निकले हुए थे। उस वन-स्थलीमें खिले हुए अगस्त्य वृक्षोंको देखकर ऐसा संदेह होता था कि क्या यहाँ चाँदनी रातें शोभा पाती हैं?॥ ६४॥

अनेकाः पुष्पजात्यश्च फुल्लिता देवता इव।
मृद्वीका मण्डपा रम्या घटयन्त्रैः सुशोभिताः॥ ६५॥

वहाँ अनेकों जातिके पुष्प देवताओंकी भाँति प्रफुल्लित थे। दाखोंके मनोहर मण्डप (उन्हें सींचनेके लिये लगे हुए) घटयन्त्रोंसे सुशोभित थे॥ ६५॥

रम्भास्ताः फलिता यत्र स्वर्लोकात् किं समागताः।
तद्रक्षमाणो वीरोऽसौ धनुष्पाणिर्लवो बली॥ ६६॥

वहाँ बहुत-से केले फले हुए थे, जिन्हें देख यह जिज्ञासा होती थी कि क्या ये स्वर्गलोकसे आये हैं? उस समय बलवान् वीर लव धनुष हाथमें लिये हुए उस उपवनकी रक्षा कर रहा था॥ ६६॥

दूर्वाङ्कुरांश्चरन्तं तु वाजिनं ददृशे पुरः।
ऋषिपुत्रान् समाहूय हयाभ्याशं जगाम सः॥ ६७॥

जब उसने अपने सामने दूर्वाङ्कुरोंको चरते हुए उस घोड़ेको देखा, तब वह ऋषिकुमारोंको बुलाकर घोड़ेके निकट गया॥ ६७॥

हरेर्भालगतं पत्रं वाचयामास बालकः।
एकवीराद्य कौसल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः॥ ६८॥
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली।
तत्पत्रस्थमभिप्रायं ज्ञात्वा शीघ्रं लवोऽब्रवीत्॥ ६९॥

फिर तो बालक लव घोड़ेके मस्तकपर बँधे हुए स्वर्ण-पत्रको बाँचने लगा—'आजकल एक कौसल्या ही वीरमाता हैं, उनके पुत्र रघुनन्दन श्रीराम हैं। उन्हीं रामने इस घोड़ेको छोड़ा है। यदि कोई बलाभिमानी वीर हो तो इस घोड़ेको पकड़ ले।' तब उस पत्रस्थ अभिप्रायको शीघ्र ही समझकर लव कहने लगा—॥ ६८-६९॥

अस्माकं जननी वन्ध्या त्वेकवीरा न सा किमु।
इत्येवमुक्त्वा वचनं लवो दध्रे तुरङ्गमम्॥ ७०॥
उत्तरीयं समुत्क्षिप्य बबन्ध कदलीतरौ।
वारयन्ति स्म तं वीरं मुनिपुत्रा भयान्विताः॥ ७१॥

'क्या हमारी माता बाँझ है? वह एकमात्र वीर पुत्र उत्पन्न करनेवाली नहीं है?' ऐसा कहकर लवने घोड़ेको पकड़ लिया और अपने दुपट्टेको उसपर डालकर उसे केलेके वृक्षसे बाँध दिया। तब मुनिकुमार भयभीत होकर वीरवर लवको मना करने लगे॥ ७०-७१॥

मुनिपुत्रा ऊचुः

लव त्वया रामवाजी वृथायं बध्यते बलात्।
अस्य ये रक्षकास्ते त्वां नेष्यन्ति त्यज्यतामयम् ॥ ७२ ॥
अनादृत्य वचस्तेषामब्रवीत् कुपितो लवः।

मुनिकुमारोंने कहा—लव ! तुम श्रीरामके इस घोड़ेको बलपूर्वक व्यर्थ ही बाँध रहे हो। इसके जो रक्षक हैं, वे तुम्हें पकड़ ले जायँगे; इसलिये इसे छोड़ दो। तब उनकी बातोंका अनादर करके लव क्रुद्ध होकर बोला ॥

लव उवाच

ऋषिस्त्रीकुक्षिजा यूयमहं सीतोदरोद्भवः ॥ ७३ ॥
सीतायाश्चोदरे जातः कृमिरेव न संशयः।
यद्यमुं वाजिनं बद्ध्वा मुच्येयं भयशङ्कया।
परं श्रेयस्तु मरणं न लज्जा मामुपाव्रजेत् ॥ ७४ ॥

लवने कहा—ऋषिकुमारो ! तुमलोग ऋषिपत्नियोंकी कोखसे पैदा हुए हो और मैं सीताके उदरसे उत्पन्न हुआ हूँ। यदि मैं इस घोड़ेको बाँधकर पुनः भयकी आशङ्कासे इसे छोड़ दूँ तो निस्संदेह मैं सीताके पेटसे एक कीड़ा ही पैदा हुआ। अतः मैं मर जाना ही परम श्रेयस्कर समझता हूँ, परंतु मुझे लज्जित होनेका अवसर न प्राप्त हो ॥ ७३-७४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने तुरगग्रहणो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें लवके द्वारा अश्वका ग्रहण नामक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—लवका शत्रुघ्नके साथ युद्ध और मूर्च्छित होना तथा शत्रुघ्नका उसे अपने रथपर बैठाकर प्रस्थान करना

जैमिनिरुवाच

ततः प्राप्तं महत् सैन्यं रथवाजिसमाकुलम्।
मत्तद्विरदसम्बाधं पत्तिभिश्च समावृतम् ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर वहाँ एक बहुत बड़ी सेना आ पहुँची, जो रथों और घोड़ोंसे व्याप्त, मदमत्त हाथियोंसे भरी हुई और पैदल सैनिकोंसे संयुक्त थी ॥

कुतोऽश्वश्च कुतोऽश्वश्च व्याहरन्तो महाबलाः।
रथिनः शतसाहस्राः प्राप्ताः शत्रुघ्नपालिताः ॥ २ ॥

उस समय शत्रुघ्नद्वारा सुरक्षित एक लाख महाबली रथी वीर 'घोड़ा कहाँ है ? घोड़ा कहाँ है ?' ऐसा कहते हुए वहाँ आ पहुँचे ॥ २ ॥

ददृशुः कदलीवृक्षे बद्धमश्वं महारथाः।
पप्रच्छुः केन बद्धोऽयं लघूंस्तान् ब्रह्मचारिणः॥ ३ ॥

जब उन महारथियोंने घोड़ेको केलेके वृक्षमें बँधा देखा, तब वे उन छोटे-छोटे ब्रह्मचारियोंसे पूछने लगे—'इस घोड़ेको किसने बाँधा है ?' ॥ ३ ॥

तेऽब्रुवन्नाम्रवृक्षस्य मूले तिष्ठति निर्भयः।
लवश्च नाम्ना विख्यातस्तेनायं विधृतो हयः ॥ ४ ॥

तब उन बालकोंने बतलाया—'वह जो आमके वृक्षकी जड़पर निर्भय बैठा हुआ है और 'लव' नामसे विख्यात है, उसीने इस घोड़ेको बाँध रखा है' ॥ ४ ॥

प्रहस्य रथिनस्ते तु प्रोचुर्मूर्खोऽस्ति बालकः।
बलं हयं पालयन्तो न जानात्येष वै शिशुः ॥ ५ ॥
मुच्यतां मुच्यतां चाश्वो यथा शीघ्रं व्रजेद् धराम्।
तावत् प्राप्तो महाबाहुर्धनुष्पाणिर्लवो बली ॥ ६ ॥
किमिदं गर्वितैर्वीरैः क्रियते हयमोचनम्।
मां जित्वा मुच्यतामश्वो मयि तिष्ठति न क्वचित् ॥ ७ ॥

तब वे रथी योद्धा हँसकर कहने लगे—'यह बालक मूर्ख है। इस बच्चेको पता नहीं है कि हमलोगोंसहित एक विशाल सेना इस घोड़ेकी रक्षा कर रही है। अतः अब इस घोड़ेको खोल दो, इसे बन्धनमुक्त कर दो, जिससे यह शीघ्र ही पृथ्वी-पर विचरण करे।' तबतक महाबाहु बलवान् लव धनुष हाथमें लिये हुए वहाँ आ धमका और कहने लगा—'वीरो ! तुमलोग गर्वमें आकर क्यों इस घोड़ेको खोल रहे हो ? पहले मुझे पराजित कर दो तत्पश्चात् घोड़ेको खोलना, अन्यथा मेरे रहते वह कहीं नहीं जा सकता' ॥ ५-७ ॥

अशृण्वतां वचस्तेषां मोक्तॄणां हयमुत्तमम् ।
चिच्छेद हस्तान् स लवो बलेन निशितैः शरैः ॥ ८ ॥

परंतु जब उन्होंने उसकी बातको अनसुनी कर दिया, तब लवने उस उत्तम अश्वको बन्धनमुक्त करनेवाले वीरोंके हाथोंको अपने तीखे बाणोंद्वारा बलपूर्वक काट डाला ॥ ८ ॥

ते छिन्नहस्ता योद्धारो ब्रुवन्ति स्म निपात्यताम् ।
ततस्तं शरवर्षेण ववृषुस्ते समागताः ॥९॥

हाथ कट जानेपर वे योद्धा कहने लगे—'इसे मारकर गिरा दो ।' तब वहाँ आये हुए सभी वीरोंने लवपर बाणोंकी झड़ी लगा दी ॥ ९ ॥

केचिच्छक्तीश्च पाशांश्च चिक्षिपुः शतशो बलात् ।
आपतच्छरसंघातो न पस्पर्श लवं तदा ॥ १० ॥
यथा हि गौतमीतोये स्नातं पापचयो महान् ।

कुछ वीरोंने बलपूर्वक उसपर सैकड़ों शक्तियों तथा पाशोंसे प्रहार किया; परंतु गिरते हुए वे बाणसमूह लवका स्पर्शतक नहीं कर सके, जैसे गौतमी नदीके जलमें स्नान करनेवालेको महान् पापराशि नहीं छू सकती ॥ १०½ ॥

तच्छस्त्रसंघं चिच्छेद योगीव भवबन्धनम् ॥ ११ ॥
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं हृद्यताडयत् ।

तब भव-बन्धनको काटनेवाले योगीकी तरह लवने उस अस्त्रसमूहको काट गिराया और एक-एक वीरके हृदयमें पाँच-पाँच बाणोंसे चोट पहुँचायी ॥ ११½ ॥

निषङ्गाभ्यामक्षयाभ्यां गृह्णन् बाणान् मुमोच सः॥१२॥
गजा भिन्ना द्विधा बाणैः शुण्डाः छिन्ना द्विधा द्विधा ।
शिरांस्याधोरणानां च चिच्छेद निशितैः शरैः ॥१३॥

वह अपने दोनों अक्षय तरकसोंमेंसे बाण निकाल-निकालकर छोड़ने लगा । उसके बाणोंके प्रहारसे बहुत-से गजराज बीचसे ही विदीर्ण हो गये, उनके सूँड भी कटकर दो-दो टुकड़ोंमें बँट गये । फिर उसने अपने पैने बाणोंसे महावतोंका भी सिर काट लिया ॥ १२-१३ ॥

काश्मीरकम्बलान् वीरो घण्टाश्चिच्छेद लम्बिताः ।
हस्तिमञ्चान् पताकाश्च व्यलुनात् स लवो बली ॥१४॥

बलवान् बीर लवने हाथियोंके काश्मीरी झूल, लटकते हुए घंटे, हौदे और पताकाओंको काटकर गिरा दिया ॥१४॥

रथान् काञ्चनसंनाहानच्छिनद् धन्विनां वरः ।
चक्राणि चक्ररक्षांश्च त्रिवेणून् सारथींस्तथा ॥ १५ ॥

धनुर्धर वीरोंमें श्रेष्ठ लवने सुवर्णमय आवरणसे विभूषित रथोंको तथा उनके पहियों, चक्ररक्षक वीरों, त्रिवेणुओं और सारथियोंको काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ १५ ॥

अश्वांश्च व्यधमद् बाणैस्तथा वै रथसारथीन् ।
चामराणि ध्वजस्तम्भान् धनूंषि सुदृढानि च ॥१६॥
तूणीरान्निशितैर्बाणैश्चिच्छेद स कुशानुजः ।

उसने अपने बाणोंसे घोड़ों और रथसहित सारथियोंको विध्वंस कर दिया । फिर कुशके छोटे भाई लवने तीखे बाणोंसे चँवर, ध्वजस्तम्भ, सुदृढ़ धनुष और तरकसोंको भी काट दिया ॥

अवधीत् तुरगांश्चापि साश्वारोहान् रघूत्तमः ॥ १७ ॥
पदातीन् सायुधान् प्रासांश्चिच्छेद तिलशस्तदा ।
एवं लवो महत् कर्म चक्रे संग्राममूर्द्धनि ॥१८॥

रघुश्रेष्ठ लवने उस समय सवारोंसहित घोड़ोंका संहार कर डाला । हथियारसहित पैदल सैनिकों और प्रासोंको काटकर तिलके समान टुकड़े कर दिये । इस प्रकार लवने संग्रामके मुहानेपर महान् संहार मचा दिया ॥ १७-१८ ॥

जैमिनिरुवाच

स दृष्ट्वा निहतं सैन्यं बालकेन पदातिना ।
शत्रुघ्नः कुपितो वीरो रथमारुह्य चागमत् ।
विस्फारयन् धनुः श्रेष्ठं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१९॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब पैदल ही युद्ध करनेवाले एक बालकके द्वारा अपनी सेनाको मारी जाती देखकर वीरवर शत्रुघ्न क्रुद्ध हो गये और अपने रथपर सवार होकर वहाँ आये । वे अपने श्रेष्ठ धनुषकी टंकार करते हुए 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहने लगे ॥ १९ ॥

एवं वदन्तं शत्रुघ्नं विव्याध दशभिः शरैः ।
श्रयन्माहेश्वरं स्थानं लवो निर्भयमानसः ॥ २० ॥

तब निर्भय मनवाला लव माहेश्वर स्थानका आश्रय लेकर ऐसा कहते हुए शत्रुघ्नको दस बाणोंसे बींध दिया ॥ २० ॥

हृदि चैकेन विव्याध चतुर्भिश्चतुरो हयान् ।
अच्छिनद् ध्वजमेकेन चतुर्भिश्चक्ररक्षकान् ॥ २१ ॥
ततश्चैकेन बाणेन धनुर्ज्यामच्छिनल्लवः ।

उसने एक बाणसे उनके हृदयपर चोट की और चार बाणोंसे चारों घोड़ोंको घायल कर दिया । एक बाणसे ध्वज काट दिया और चार बाणोंसे चक्ररक्षकोंको मार डाला । फिर एक बाणसे लवने शत्रुघ्नके धनुषकी प्रत्यञ्चा काट दी॥२१½॥

आरोपयित्वा शत्रुघ्नो ज्यां द्वितीयां शरासने ॥ २२ ॥
ततो नालीकनाराचांस्तीक्ष्णभल्लान् मुमोच सः ।
त्रिभिर्ललाटे विव्याध लवं तं लक्ष्मणानुजः ॥२३॥

तब शत्रुघ्न अपने धनुषपर दूसरी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर नालीक नामक बाण और तीखे भल्ल छोड़ने लगे। लक्ष्मणके अनुज शत्रुघ्नने तीन भल्लोंसे लवके ललाटपर घाव कर दिया ॥

त्रिभिस्तैस्ताडितो बालः प्रहसन् वाक्यमब्रवीत् ।

उन तीन बाणोंसे पीड़ित होकर बालक लव मुसकराता हुआ कहने लगा ॥ २३½ ॥

लव उवाच

ललाटे मम पुष्पाणि लग्नानि कमलानि किम् ॥२४॥
एतावत् ते बलं वीरं समग्रं परिलक्ष्यते ।

लव बोला—क्या मेरे ललाटपर ये कमलके फूल लगाये गये हैं ? वीर ! मालूम होता है—यही तुम्हारा सारा बल है ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥ २५ ॥
अनयन्निशितैर्बाणैर्यमस्य सदनं महत् ।
सारथेश्च शिरः कायाच्छरेणैकेन चाहरत् ॥ २६ ॥

ऐसी बात कहकर लवने चार पैने बाणोंसे शत्रुघ्नके चारों घोड़ोंको यमराजके विशाल भवनमें भेज दिया और एक बाणसे सारथिके सिरको उसकी कायासे काट गिराया ॥ २५-२६ ॥

द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद ध्वजं चास्य समुच्छ्रितम् ।
द्विधा चक्रे लवो बाणैः शत्रुघ्नस्य धनुर्दृढम् ॥२७॥

पुनः लवने दो बाणोंसे शत्रुघ्नके ऊँचे ध्वजको काट दिया और बाणोंके प्रहारसे उनके सुदृढ़ धनुषको काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये ॥ २७ ॥

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
शत्रुघ्नः कुपितो वीरो धनुरन्यत् समाददे ॥ २८ ॥

इस प्रकार जब वीरवर शत्रुघ्नका धनुष काट दिया गया, रथ तोड़ डाला गया, घोड़े और सारथि मार डाले गये, तब क्रुद्ध होकर उन्होंने दूसरा धनुष हाथमें लिया ॥ २८ ॥

सगुणं धनुरादाय शरं चैकं समाददे ।
पीतवर्णं सुनिशितं गार्ध्रपत्रैरलंकृतम् ॥ २९ ॥

फिर उस प्रत्यञ्चासहित धनुषको उठाकर उसपर एक पीले रंगका गीधकी पाँखसे सुशोभित अत्यन्त तीखा बाण चढ़ाया ॥ २९ ॥

ततोऽब्रवीत् स शत्रुघ्नः पलायस्व शिशोऽधुना ।
अन्यथा मरणं ते स्यात् कृपा मां बाधते त्वयि ॥३०॥

तब शत्रुघ्नने कहा—'अरे बालक ! अब तू भाग जा, अन्यथा तेरी मृत्यु हो जायगी। मुझे तुझपर बड़ी दया आ रही है, जो बाण छोड़नेमें बाधा दे रही है' ॥ ३० ॥

तदाकर्ण्य वचस्तस्य कुपितो बलवाँल्लवः ।
चिच्छेद तं शरं दिव्यं स द्विधा व्यपतद् विभो ॥ ३१ ॥
तथा हि पूर्वजाः पापात् स्वर्गाद् वै निपतन्त्यधः ।
कूटसाक्ष्यं च ये कुर्युर्व्यवहारच्युतास्तथा ॥ ३२ ॥

शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर बलवान् लव क्रुद्ध हो गया। विभो ! उसने शत्रुघ्नके उस दिव्य बाणको काट दिया, जिससे वह दो टूक होकर उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़ा, जैसे जो लोग व्यवहारसे च्युत हैं और झूठी गवाही देनेवाले हैं, उनके उस पापके कारण उनके पूर्वज स्वर्गलोकसे नीचे गिर पड़ते हैं॥

शत्रुघ्नो विस्मयाविष्टो बाणं चान्यं समाददे ।
तं शरं कालसंकाशं यावद्धनुषि संदधे ॥ ३३ ॥
तावत् सचापं सशरं चिच्छेद कुपितो लवः ।

तब आश्चर्यचकित होकर शत्रुघ्नने दूसरा बाण हाथमें लिया और ज्यों ही वे उस काल-सरीखे बाणको धनुषपर संधान करने लगे त्यों ही लवने क्रुद्ध होकर उस बाणसहित धनुषको काट दिया ॥ ३३½ ॥

ततो जग्राह शत्रुघ्नो लवणं येन चावधीत् ॥ ३४ ॥
तद् धनुस्तं शरं दिव्यं सूर्यवैश्वानरप्रभम् ।
मुमोच बाणं रुचिरं हतोऽसीति वचस्तथा ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् शत्रुघ्नने जिससे लवणासुरका वध किया था, उस धनुष और सूर्य एवं अग्निके समान प्रज्वलित उस दिव्य बाणको हाथमें लिया और 'अब तू मारा गया' यों कहते हुए उस सुन्दर बाणको छोड़ दिया ॥ ३४-३५ ॥

अमोघं स शरं ज्ञात्वा लवः सस्मार तं कुशम् ।
अस्मिन्नवसरे भ्राता कुशो मे विद्यते यदि ॥ ३६ ॥
तदास्य बाणस्य भयं न स्यान्मम कदाचन ।
अथ ते जानकी सत्यात् पातिव्रत्यादमुं शरम् ॥ ३७ ॥
छेत्स्ये मे स्यात् ततः कीर्तिरिति बाणं मुमोच सः ।
तेन बाणेन तं बाणं मध्ये चिच्छेद बालकः ॥ ३८ ॥

उस बाणको अमोघ जानकर लव कुशका स्मरण करते हुए कहने लगा—'यदि इस अवसरपर मेरे भ्राता कुश

विद्यमान होते तो मुझे इस बाणका भय कदापि न होता। माता जानकी! अब मैं तुम्हारे सत्य और पातिव्रत्यके प्रभावसे इस बाणको काट दूँ तो इससे मेरी कीर्ति बढ़ेगी।' ऐसा कहकर बालक लवने बाण छोड़ दिया और अपने उस बाणसे शत्रुघ्नके बाणको बीचो-बीचसे काट डाला॥ ३६—३८॥

जैमिनिरुवाच

पूर्वार्धं न्यपतद् भूमावुत्तरार्धं च नापतत्।
तेनार्धेन धनुश्छिन्नं लवस्य हृदयं तथा॥ ३९॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उस बाणका पूर्वार्ध भाग तो पृथ्वीपर गिर पड़ा, परंतु उत्तरार्ध भाग नहीं गिरा। उस आधे टुकड़ेने लवके धनुषको काटकर उसके हृदयको भी विदीर्ण कर दिया॥ ३९॥

स च्छिन्नधन्वा हृदि ताडितो भृशं
विभग्नचापो निपपात भूतले।
शिखी सुवेषो रुधिरावलिप्तो
मुमोह बालो न विवेद किंचन॥ ४०॥

तब जिसका धनुष कट गया था और जिसके हृदयमें गहरी चोट लगी थी, वह टूटे हुए धनुषवाला शिखाधारी सुवेषी बालक लव रक्तसे लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया। उस समय उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहा॥

ततः शङ्खांश्च भेरींश्च वादयन्तः सुहर्षिताः।
योधाः शत्रुघ्नसैन्यस्थाः मृतशेषा जगर्जिरे॥ ४१॥

तत्पश्चात् शत्रुघ्नकी सेनामें मरनेसे बचे हुए योद्धा अत्यन्त हर्षित हुए और शङ्ख तथा नगाड़े बजाकर गर्जना करने लगे॥

मुमुचुस्तं हयं वीरा भीतं दृष्ट्वा च तं लवम्।
मुक्तः स तुरगो योधैर्बभ्रामोपवने तदा॥ ४२॥

फिर लवको भयभीत देखकर उन वीरोंने उस बँधे हुए घोड़ेको खोल दिया। तब योधाओंद्वारा मुक्त हुआ वह अश्व उस उपवनमें घूमने लगा॥ ४२॥

कृपाविष्टश्च शत्रुघ्नो लवमुत्थाप्य पाणिना।
रामाकृतिरयं बालः सिच्यतां पयसाधुना॥ ४३॥

तदनन्तर शत्रुघ्नने करुणासे द्रवीभूत हो लवको अपने हाथसे उठाकर कहा—'इस बालककी आकृति तो श्रीरामचन्द्रजीके समान है, अतः अब इसे जलसे सींचो'॥ ४३॥

ततस्ते सेवकाः शीघ्रमम्भोभिः सिषिचुर्लवम्।
सजीवं रथमारोप्य पृष्ठतोऽश्वस्य ते ययुः॥ ४४॥

तब वे सभी सेवक शीघ्र ही लवको जलसे सींचने लगे और जीते-जी उसे रथपर चढ़ाकर पुनः वे घोड़ेके पीछे-पीछे चल दिये॥ ४४॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने लवमूर्च्छाप्राप्तिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें लवको मूर्च्छाकी प्राप्ति नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—मुनिकुमारोंद्वारा लवका समाचार पाकर सीताका विलाप, कुशका वनसे लौटकर युद्धके लिये जाना, कुशद्वारा शत्रुघ्नके सेनापति तथा उसके भाई नगका वध, बची हुई सेनाका अयोध्याकी ओर पलायन

जनमेजय उवाच

लवे धृते यथा युद्धं घोररूपं बभूव ह।
जगाम कुत्र च कुशः कथं सीता न वेद तत्॥ १॥
जैमिने सर्वमाचक्ष्व पवित्रां कुशसत्कथाम्।

जनमेजयने पूछा—जैमिनिजी! लवके पकड़ लिये जानेपर पुनः कैसा भयंकर संग्राम हुआ? उस समय कुश कहाँ चला गया था और सीताजीको इस वृत्तान्तका पता क्यों नहीं चला? मुने! कुशसे सम्बन्ध रखनेवाली पवित्र सत्कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १½॥

जैमिनिरुवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कुशस्य चरितं महत्॥ २॥
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते स्त्री पुमानपि।

जैमिनिजीने कहा—राजन्! सुनो, मैं कुशके उस महान् चरित्रका वर्णन करता हूँ, जिसे सुननेवाला मनुष्य

स्त्री हो अथवा पुरुष, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥

अश्वे प्रचलिते तस्मिँल्लवे नीते महारथैः ॥ ३ ॥
अश्रुपूर्णमुखाः सीतां मुनिपुत्रास्तदा ययुः ।
सीते बद्धो लवेनाश्वः कस्यचिन्नृपतेर्बलात् ॥ ४ ॥
नृपतेस्तस्य सैन्येन पुत्रस्ते युयुधे लवः ।
निहत्य सैन्यं बालोऽसौ श्रान्तो वीरेण केनचित् ॥५॥
धृतो हस्तगतं छित्त्वा धनुर्नीतः पुरं प्रति ।

जब वह अश्व आगेको बढ़ा और महारथी वीर लवको पकड़कर उसके पीछे चलते बने, तब मुनिकुमार मुखपर आँसुओंकी धारा बहाते हुए सीताजीके पास गये और कहने लगे—'सीते ! तुम्हारे पुत्र लवने किसी राजाके घोड़ेको बल-पूर्वक बाँध लिया और फिर उस नरेशकी सेनाके साथ युद्ध करने लगा। जब वह बालक बहुत-सी सेनाका संहार करके थक गया था, उस समय किसी वीरने उसके हाथमें स्थित धनुषको काटकर उसे पकड़ लिया और अब वह उसे अपने नगरकी ओर ले जा रहा है' ॥ ३–५½ ॥

तद्वाक्यमाकर्ण्य बभूव जानकी
चित्रस्थिता देववराङ्गना सती ।
यथा हि विद्युद्ध्वनिना कुमारिका
धनी नरो वस्त्वपहारतो यथा ॥ ६ ॥

तब जैसे बिजलीकी कड़कड़ाहट सुनकर अल्पवयस्का कन्या तथा वस्तुओंके अपहरण हो जानेपर धनी पुरुष हक्का-बक्का हो जाता है, उसी तरह मुनिकुमारोंकी बात सुनकर सती-साध्वी जानकी चित्रलिखित श्रेष्ठ देवाङ्गनाकी भाँति ठगी-सी खड़ी रह गयी ॥ ६ ॥

सीतोवाच

मनसा कर्मणा वाचा यद्यहं रामतत्परा ।
तेन सत्येन मे पुत्रो लवोऽस्तु कुशली रणे ॥ ७ ॥

सीताजीने कहा—यदि मैं मन, वचन और कर्मसे श्रीरामका ही आश्रय ग्रहण करनेवाली होऊँ तो उस सत्यके प्रतापसे मेरा पुत्र लव रणक्षेत्रमें सकुशल रहे ॥ ७ ॥

तावज्जीव्याल्लवः पुत्रो यावज्ज्येष्ठः समाव्रजेत् ।
एकाकी निहतो बालः पापिष्ठैस्तैर्महारथैः ॥ ८ ॥

वह मेरा बेटा लव तबतक जीवित रहे, जबतक कि उसका बड़ा भाई कुश नहीं आ जाता। हाय ! उन पापी महारथियों-ने मेरे बच्चेको अकेला पाकर मारा है ॥ ८ ॥

रुरोद सा भृशं बाला पुत्रशोकेन पीडिता ।
मामनापृच्छय यातोऽसि शासने निरतो लव ॥ ९ ॥

तब पुत्रशोकसे पीडित होकर सुन्दरी सीता उच्च स्वरसे रोने लगीं—'बेटा लव ! तू तो सदा मेरी आज्ञाके पालनमें ही तत्पर रहता था, परंतु इस समय तू मुझसे बिना पूछे ही कैसे चला गया ? ॥ ९ ॥

चन्द्रबिम्बसमानं ते मुखं बाणैरभिद्यत ।
गात्रं च शकलीजातं लवस्य निशितैः शरैः ॥ १० ॥

'वत्स ! चन्द्रमण्डलके समान सुन्दर तेरा मुख बाणोंसे विदीर्ण हो गया होगा ? हाय ! मेरे पुत्र लवका शरीर तीखे बाणोंसे टूक-टूक हो गया होगा ॥ १० ॥

कन्दमूलफलाशी च द्वादशाब्दो विचक्षणः ।
परं तु युद्ध्यतां तेषां शूराणां तं च बालकम् ॥ ११ ॥
कराः कथं प्रवृत्तास्ते निर्दयानां च पापिनाम् ।

'मेरा लव कन्द-मूल-फलका भोजन करनेवाला अभी बारह वर्षका बचा था। वह युद्धकलामें निपुण भी नहीं था; तथापि उन युद्ध करनेवाले निर्दयी एवं पापी वीरोंके वे हाथ उस बालकपर कैसे उठ सके ! ॥ ११½ ॥

अस्मिंश्च समये तातो वाल्मीकिर्न कुशो बली ॥ १२ ॥
कस्येदं पुरतो वक्ष्ये दुःखं प्राप्तं सुदारुणम् ।

'इस समय यहाँ न तो पिता वाल्मीकि ही विद्यमान हैं और न बलवान् कुश ही उपस्थित है ! अब मैं किसके आगे यह वृत्तान्त कहूँ। हाय ! मेरे ऊपर अत्यन्त कठोर दुःख आ पड़ा !' ॥ १२½ ॥

जैमिनिरुवाच

तावत् समित्कुशाहारी वनान्निववृते कुशः ।
आगच्छतः कुशस्याथ दुर्निमित्तानि भारत ॥ १३ ॥
बहूनि पथि जातानि चित्तोद्वेगकराणि च ।
अपसव्यं मृगा यान्ति नदन्तो भैरवं रवम् ॥ १४ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—भारत ! इतनेमें ही समिधा और कुश लिये हुए कुश वनसे लौट रहा था। मार्गमें आते हुए उसे बहुत-से ऐसे अपशकुन हुए, जो चित्तको उद्विग्न कर देनेवाले थे। उस समय मृग भयंकर शब्द करते हुए बायीं ओरको भागने लगे ॥ १३-१४ ॥

ततः स व्यथयाऽऽविष्टो रामपुत्रो रघूद्वहः ।
चिन्तयामास मनसा केशवं विघ्नहारिणम् ॥ १५ ॥

तब रघुनन्दन श्रीराम-पुत्र कुश परम दुखी हुआ और मनमें विघ्नहारी केशवका ध्यान करने लगा ॥ १५ ॥

चिन्तयाविष्टमनसो बाहू तौ स्फुरितौ भृशम्।
नेत्राभ्यां स्वयमेवाम्भः सुस्रुवे विव्यथे मनः ॥ १६ ॥

फिर चिन्तामग्न मनवाले कुशकी दोनों भुजाएँ बारंबार फड़कने लगीं। नेत्रोंसे स्वयं ही आँसू बहने लगा और मन व्यथित हो उठा ॥ १६ ॥

एवं स आश्रमद्वारं कुशः प्राप्तो व्यचिन्तयत्।
लवो जवेन चायाति कथं मे सम्मुखो न हि ॥ १७ ॥

इस प्रकार आश्रमके द्वारपर पहुँचकर कुश विचार करने लगा—'क्या कारण है कि आज लव दौड़ता हुआ मेरे सामने नहीं आ रहा है? ॥ १७ ॥

आयान्तं तं लवं प्रातर्निवारयितवानहम्।
तस्मात् किं कुपितो नैति केन चासौ धृतो लवः ॥१८॥

'प्रातःकाल लव मेरे पीछे चलना चाहता था, तब मैंने उसे मना कर दिया था, इस कारण वह रूठ तो नहीं गया, जिससे नहीं आ रहा है अथवा किसीने लवको पकड़ तो नहीं लिया है?' ॥ १८ ॥

इत्येवं चिन्तयन् वीरो ददर्श जननीं स्वकाम्।
सीतां नमस्कृत्य कुशो जगाद वचनं शुभम् ॥ १९ ॥
मातः कस्मात् प्रलापोऽयं क्रियते क्व लवो गतः।

यों तर्क-वितर्क करते हुए वीरवर कुशने अपनी माता सीताका दर्शन किया और उन्हें नमस्कार करके सुन्दर वाणीमें पूछने लगा—'माँ! लव कहाँ गया? तुम क्यों ऐसा विलाप कर रही हो?' ॥ १९½ ॥

सीतोवाच

वत्स त्वयि गतेऽरण्ये फलान्याहर्तुमञ्जसा ॥२०॥
सहितो मुनिपुत्रैस्तु लवः क्रीडापरायणः।
उद्यानं गतवांस्तत्र कस्यचिन्नृपतेर्हयः ॥ २१ ॥
विचरन्निच्छया प्राप्तो ह्यग्रहीत् तं बलाल्लवः।
यथाबलं युद्ध्यमानो रणे मूर्च्छामुपागतः ॥ २२ ॥

सीताने कहा—वत्स! जब तुम फल लानेके लिये वनमें चले गये, तब लव तुरंत ही मुनिकुमारोंके साथ खेलता हुआ उपवनमें जा पहुँचा। वहाँ किसी राजाका अश्व स्वेच्छानुसार घूमता हुआ आया। तब लवने उसे बलपूर्वक पकड़ लिया; फिर रणक्षेत्रमें यथाशक्ति युद्ध करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥ २०-२२ ॥

तैर्नीयते पुरं बद्ध्वा जीवन् वा मृत एव वा।
कस्तं मोचयिता बालं त्वां विना कुश पुत्रक ॥ २३ ॥
यथा विष्णुः स्मृतो भक्तं संसारान्मोचयेद् द्रुतम्।

उस अवस्थामें वे वीर उसे बाँधकर अपने नगरको ले जा रहे हैं। पता नहीं, मेरा लाल लव अभी जीवित है या मर गया। बेटा कुश! तुम्हारे सिवा दूसरा कौन उस बालकको छुड़ा सकता है, अतः जैसे स्मरण करनेपर भगवान् विष्णु अपने भक्तको शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर देते हैं (उसी तरह तुम भी लवको छुड़ा लाओ) ॥ २३½ ॥

तत् तस्या वचनं श्रुत्वा त्रिशाखां भ्रुकुटीं दधत् ।२४।
नेत्रे विलोहिते बिभ्रत् कुशो वचनमब्रवीत्।

माताकी ऐसी बात सुनकर कुशकी भौंहोंमें तीन स्थानपर बल पड़ गये। उसके नेत्र विशेषरूपसे लाल हो गये। तब वह (अपनी मातासे) कहने लगा ॥ २४½ ॥

कुश उवाच

अद्य मद्बाणभिन्नानां वैरिणां रुधिरं धरा।
पास्यते रुधिरं कोष्णं शोषितं सूर्यभानुभिः ॥ २५ ॥

कुश बोला—माँ! आज यह पृथ्वी मेरे बाणोंसे विदीर्ण हुए शत्रुओंके सूर्य-किरणोंद्वारा सोखे जाते हुए गरम-गरम रक्तका पान करेगी ॥ २५ ॥

इन्द्रश्च वरुणो वापि कुबेरो वा महाबलः ॥ २६ ॥
यमश्च यक्षगन्धर्वास्तेषां साहाय्यकारिणः।
भवन्तु सर्वे देवाश्च साध्याश्चापि मरुद्गणाः ॥ २७ ॥
तथापि तान् रणे जित्वा लवं तं परिमोचये।

यदि इन्द्र, वरुण, महाबली कुबेर, यमराज, यक्ष, गन्धर्व, साध्यगण, मरुद्गण आदि समस्त देवता उनकी सहायता करनेको उद्यत हो जायँगे तो भी मैं उन्हें युद्धमें पराजित करके उस लवको छुड़ाऊँगा ॥ २६-२७½ ॥

एष गच्छामि भो मातर्निषङ्गौ धनुरेव च ॥ २८ ॥
प्रदेहि चर्म खड्गं च किरीटं कवचं तथा।

माँ! तुम मेरे दोनों अक्षय तरकस, धनुष, ढाल, तलवार, किरीट और कवचको उठा तो दो, मैं अभी जाता हूँ ॥२८½॥

तत् पुत्रवचनं श्रुत्वा सत्वरं जानकी तदा।
प्रविश्य शालां तां रम्यां प्रददाविषुधी धनुः ॥ २९ ॥

चर्म खड्गं किरीटं च कवचं च कुशोऽग्रहीत्।
सन्नद्धः कवची खड्गी चापबाणधरो युवा ॥ ३० ॥
कुशो ययौ नमस्कृत्य जननीं तां च जानकीम्।
सीतयासौ प्रयुक्ताशीः कुशो बाहू व्यताडयत् ॥ ३१ ॥
विस्फारयन् धनुश्चोग्रं जगाम त्वरितो बली।
यथा मत्तद्विपान् सिंहीतनयोऽभ्येति निर्भयः ॥ ३२ ॥

तब पुत्रका वह वचन सुनकर जानकीने तुरंत ही उस रमणीय कुटियामें प्रवेश किया और दोनों तरकस, धनुष, ढाल, तलवार, किरीट और कवच लाकर कुशको दे दिया। फिर तो तरुण-अवस्थावाले कुशने उन्हें लेकर कवच पहिन लिया और तलवार लटका ली तथा हाथोंमें धनुष-बाण धारण करके वह युद्धके लिये उद्यत हो गया और अपनी माता जानकीको प्रणाम करके चल पड़ा। उस समय सीताजीने उसे आशीर्वाद दिया। तब जैसे सिंहिनीका बच्चा निर्भय होकर मतवाले हाथियोंके पास चला जाता है, उसी तरह बलवान् कुश अपनी भुजाओंपर ताल ठोंकने लगा और अपने विशाल धनुषकी टंकार करता हुआ तुरंत ही शत्रुओंकी ओर बढ़ा २९–३२

गच्छतस्तांस्ततो दृष्ट्वा शत्रून् दूरादथाह्वयत्।
तिष्ठन्तु वैरिणः सर्वे यदि शक्तिर्हि विद्यते ॥ ३३ ॥
नो चेद् बन्धुर्मदीयोऽसौ मुच्यतां वाथ युद्ध्यताम्।
अनिर्जित्य कुशं वीरं नोपसर्पितुमर्हथ ॥ ३४ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंको जाते हुए देखकर वह दूरसे ही उन्हें पुकारकर कहने लगा—'शत्रुओ! यदि तुममें शक्ति-सामर्थ्य हो तो तुम सभी खड़े हो जाओ और युद्ध करो, अन्यथा मेरे भाई लवको छोड़ दो। मुझ वीर कुशको पराजित किये बिना तुमलोगोंका आगे बढ़ना उचित नहीं है' ३३-३४

तच्छ्रुत्वा वचनं घोरं योधा वाक्यमथाब्रुवन्।
कोऽयमायाति वीरोऽसौ खड्गचर्मधरो युवा ॥ ३५ ॥
शरचापयुतः शूरः किरीटी कवची महान्।
कालो नूनं हि सर्वेषामयं नो भविता किल ॥ ३६ ॥

उस भयंकर वचनको सुनकर योद्धा आपसमें कहने लगे—'यह कौन वीर आ रहा है? इसकी तरुण-अवस्था है। यह ढाल-तलवार धारण किये हुए है। महान् शूरवीर, धनुष-बाणसे युक्त एवं किरीट और कवचसे सुशोभित है। यह निश्चय ही हम सब लोगोंका काल होगा?' ॥ ३५-३६ ॥

इति जल्पन्ति वै सर्वे सैनिका भयविह्वलाः।
ध्वजाः कणकणायन्ते द्रुमा वातेरिता इव ॥ ३७ ॥

इस प्रकार वे सभी सैनिक भयसे व्याकुल होकर बातें कर ही रहे थे कि उनकी ध्वजाओंमें वायुसे झकोरे हुए वृक्षकी भाँति खड़खड़ाहटका शब्द होने लगा ॥ ३७ ॥

किरीटानि च वीराणां गृध्राः पस्पर्शुरम्बरात्।
तस्मिन् काले निषङ्गेभ्यः स्वयं निर्यान्त्यलं शराः ॥ ३८ ॥

उस समय गीध आकाशमार्गसे आकर उन वीरोंके मुकुटोंका स्पर्श करने लगे। पर्याप्तमात्रामें बाण अपने-आप तरकसोंसे बाहर निकलने लगे ॥ ३८ ॥

कोशेभ्यश्च पृथग् भूताः स्वयमेवासयो ययुः।
चण्डो वातः प्रववृते द्रुमानुन्मूलयन् ध्वजान् ॥ ३९ ॥

तलवारें स्वयं ही म्यानोंसे बाहर निकल पड़ीं। वृक्षों तथा ध्वजाओंको जड़से उखाड़ती हुई प्रचण्ड आँधी चलने लगी ॥ ३९ ॥

रजसा संवृतं व्योम सूर्योऽन्तर्धानमागमत्।
क्षणात् प्रशान्ते रजसि वीरास्तं ददृशुः कुशम् ॥ ४० ॥

आकाश धूलसे आच्छादित हो गया, जिससे सूर्य छिप गये। क्षणभरके बाद जब धूल शान्त हुई, तब वीरोंने कुशको देखा ॥ ४० ॥

जैमिनिरुवाच

आयान्तं तं कुशं दृष्ट्वा शत्रुघ्नो वाक्यमब्रवीत्।
गच्छ सेनापते शीघ्रं निवारय शिशुं शरैः।
यावत् सैन्यं व्यूहयामस्तावद् युध्यस्व मारिष ॥ ४१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उस कुशको आक्रमण करते हुए देखकर शत्रुघ्नने अपने सेनापतिसे कहा—'सेनापते! तुम शीघ्र जाओ और बाणोंके प्रहारसे उस बच्चेको आगे बढ़नेसे रोको। आर्य! जबतक मैं अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करूँ, तबतक तुम उसके साथ युद्ध करो ॥ ४१ ॥

सेनापतिरुवाच

अहमेनं हनिष्यामि प्रसादात् तव सुव्रत।
इत्युक्त्वा प्रययौ बालं सेनाध्यक्षस्तदा बली ॥ ४२ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच विव्याध दशभिः शरैः।

सेनापतिने कहा—सुव्रत! आपकी कृपासे मैं इस बालकको मार डालूँगा। यों कहकर वह बलवान् सेनाध्यक्ष उस समय बालक कुशपर चढ़ आया और 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहते हुए उसने कुशपर दस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ४२½ ॥

कुशस्तानच्छिनद् बाणान् सेनावाहमताडयत् ॥४३॥
चतुर्भिश्चतुरोऽस्याश्वाञ्जघान कुपितः कुशः।
सारथेश्च शिरः कायाज्जहार प्रहसन्निव ॥ ४४ ॥

तब कुशने उन बाणोंको काटकर सेनापतिको पीड़ित कर दिया। फिर क्रोधमें भरकर उसने चार बाणोंसे सेनापतिके चारों घोड़ोंको मार डाला और मुसकराते हुए-से सारथिके सिर-को भी धड़से काट गिराया॥ ४३-४४॥

रथं च तिलशः कृत्वा तान् हत्वा पार्ष्णिसारथीन्।
चिच्छेद च धनुस्तस्य कवचं चाति निर्मलम् ॥४५॥

रथके तिलके समान टुकड़े करके पार्श्वरक्षकोंको मार डाला। उसके धनुष तथा अत्यन्त निर्मल कवचको भी छिन्न-भिन्न कर दिया ॥ ४५ ॥

द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद हस्तौ तस्य दुरात्मनः।
चरणौ व्यलुनात् तस्य जङ्घे ते मांसले कुशः ॥४६॥

कुशने दो बाणोंसे उस दुरात्माके दोनों हाथ, पैर और मोटी-मोटी जंघाओंको कुतर दिया ॥ ४६ ॥

जहार श्मश्रुलं वक्त्रं कण्ठोज्ज्वलितकुण्डलम्।
सेनावाहे हते तस्मिन् हाहाकारो महानभूत् ॥४७॥

फिर जिसका गला कुण्डलोंकी कान्तिसे प्रकाशित हो रहा था, उसके उस दाढ़ी-मूँछवाले मुखको काट गिराया। उस सेनापतिके मारे जानेपर वहाँ महान् हाहाकार मच गया॥४७॥

सेनावाहं हतं दृष्ट्वा भ्राता तस्य नगाह्वयः।
आजगाम गजारूढः शक्त्या तमहनत् कुशम् ॥ ४८ ॥

सेनापतिको मारा गया देखकर उसका भाई नग हाथी-पर सवार होकर वहाँ आ धमका और उसने कुशपर शक्तिसे वार किया ॥ ४८ ॥

तां शक्तिं वह्निकूटाभां ज्वलन्तीमशनीमिव।
चिच्छेद पञ्चभिर्बाणैः सीतासूनुर्महाबलः ॥ ४९ ॥
चरणांश्चतुरोऽप्यस्य गजस्य व्यलुनात् कुशः।

तब महाबली सीताकुमार कुशने अग्नि-ज्वालाकी-सी कान्तिवाली एवं वज्र-सदृश प्रकाशमान उस शक्तिको पाँच बाणों-से काट दिया और उसके गजराजके चारों पैरोंको भी कुतर दिया ॥ ४९½ ॥

संछिन्नचरणात् तस्माद् गजादाप्लुत्य धारयन् ॥५०॥
गदां विचित्रां महतीं नगोऽसौ व्यगमत् कुशम्।
कुशस्तं गदिनं हस्तं चिच्छेदाशीविषोपमम् ॥ ५१ ॥

तत्पश्चात् वह नग कटे हुए पैरोंवाले उस हाथीसे कूद पड़ा और अपनी विचित्र एवं विशाल गदा हाथमें लेकर कुश-पर चढ़ दौड़ा। कुशने सर्पके समान चढ़ाव-उतारवाले उस गदाधारी हाथको काट गिराया ॥ ५०-५१ ॥

वामहस्तेन भूमिस्थं चक्रं जग्राह सत्वरः।
तमप्यपातयद् भूमौ बाहुं चक्रधरं कुशः ॥ ५२ ॥

तब उसने तुरंत ही बायें हाथसे पृथ्वीपर पड़े हुए एक चक्रको उठा लिया। तब कुशने उस चक्रधारी बायें हाथको भी काटकर भूतलपर गिरा दिया ॥ ५२ ॥

तथापि धावमानस्य चरणावच्छिनद् द्रुतम्।
संछिन्नचरणो वीरश्छिन्नबाहुर्नगो बली ॥ ५३ ॥
धूलिधूसरसर्वाङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः।
आससाद नगो बालं राहुः सूर्यमिवाम्बरे ॥ ५४ ॥

हाथोंके कट जानेपर भी जब वह दौड़ता ही रहा, तब कुशने शीघ्र ही उसके दोनों पैरोंको भी काट दिया। तत्पश्चात् जिसके हाथ-पैर कट चुके थे, जो खूनसे लथपथ हो रहा था तथा जिसके सारे शरीरमें धूल लिपटी हुई थी, वह बलशाली वीर नग बालक कुशके ऊपर उसी तरह झपटा, जैसे आकाशमें राहु सूर्यपर आक्रमण करता है ॥ ५३-५४ ॥

छिन्नाभ्यामथ बाहुभ्यां गदां चिक्षेप तं प्रति।
स तया ताडितो वीरः पदान्न चलितः पदम् ॥ ५५ ॥

उसने अपनी कटी हुई भुजाओंसे कुशके ऊपर गदा फेंकी; परंतु उस गदासे आहत होकर वीरवर कुश एक पग भी विचलित न हुआ ॥ ५५ ॥

तुतोषास्य कुशो वीरः प्रतापेन च तादृशः।
ततः सुनिशितं बाणं वधायास्य मुमोच सः ॥ ५६ ॥

उसके ऐसे प्रतापको देखकर वीरवर कुश संतुष्ट हो गया। तत्पश्चात् उसने नगका वध करनेके लिये एक अत्यन्त तीखा बाण चलाया ॥ ५६ ॥

शरेण तेन वै छिन्नं शिरः खे तद् व्यलीयत।
शम्भुना मुण्डमालार्थं गृहीतं तद् वरं शिरः ॥ ५७ ॥

उस बाणसे उसका सिर कटकर आकाशमें विलीन हो गया। शंकरजीने अपनी मुण्डमालाके लिये उस उत्तम मस्तक-को ग्रहण कर लिया ॥ ५७ ॥

एवं नगे विनिहते कुशः कोपसमन्वितः।
तत् सैन्यं व्यहनद् बाणैर्दण्डपाणिरिवान्तकः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार नगके मारे जानेपर कुश क्रोधमें भरकर दण्ड-पाणि यमराजकी भाँति बाणवर्षा करके उस सेनाका संहार करने लगा ॥ ५८ ॥

गजान् पर्वतसंकाशान् विददार वृषेव सः ।
उच्छलद्रुधिरेणाथ वीरास्ते रक्तवाससः ॥ ५९ ॥
अजायन्त भृशं विग्नाः पुष्पिता इव किंशुकाः ।
बाणैः पतद्भिस्तु बलादग्निः प्रादुरभून्महान् ॥ ६० ॥

जैसे इन्द्र पर्वतको विदीर्ण कर देते हैं, उसी तरह कुशने पर्वत-सदृश विशालकाय गजराजोंको चीर डाला । उनके शरीरोंसे उछलते हुए रुधिरसे उन वीरोंके वस्त्र लाल हो गये । वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठे । उस समय उनकी शोभा खिले हुए पलाश-वृक्षोंकी भाँति हो रही थी । निरन्तर गिरते हुए बाणोंके संघर्षसे वहाँ महान् अग्नि प्रकट हो गयी ॥

रथनागेन्धनो वह्निर्ववृधे स च बालकः ।
पतद्भिर्वारणैर्मत्तैर्म्रियन्ते स्म महारथाः ॥ ६१ ॥

वह अग्नि रथ और हाथीरूपी इन्धनको पाकर ज्यों-ज्यों उद्दीप्त होने लगी, त्यों-त्यों बालक कुशका पराक्रम भी प्रचण्ड होता गया । गिरते हुए मतवाले हाथियोंसे दबकर कितने महारथी कालके गालमें चले गये ॥ ६१ ॥

स्वयमेव विदीर्यन्ते रथाश्चक्राणि ते ध्वजाः ।
जहुः प्राणानश्वचराः शरैर्भिन्नकलेवराः ॥ ६२ ॥

रथ, चक्र और ध्वज स्वयं ही टूटकर चूर-चूर हो गये । बाणोंके आघातसे शरीरके छिन्न-भिन्न हो जानेपर घुड़सवारोंने प्राण त्याग दिये ॥ ६२ ॥

हस्त्यश्वरथसंघाताः पदाता न्यपतन् भुवि ।
विष्णुभक्तिमकुर्वाणाः संसृताविव चाधमाः ॥ ६३ ॥
कन्यावित्तेन यो जीवेत् तदीयाः पितरो यथा ।

जैसे संसारमें विष्णुभक्तिसे विमुख अधम जीव पतित हो जाते हैं तथा जैसे कन्याके धनसे जीवन-यापन करनेवालेके पितरोंका स्वर्गसे पतन हो जाता है, उसी तरह झुंड-के-झुंड हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिक धराशायी हो गये ॥

एवं विनिहतं सैन्यं रथनागसमाकुलम् ॥ ६४ ॥
कुशेन तेन वीरेण स्वधर्मेणेव दुष्कृतम् ॥ ६५ ॥

उस वीरवर कुशने रथों और हाथियोंसे व्याप्त उस सेनाका उसी प्रकार संहार कर डाला, जैसे अपने ही धर्माचरणसे अपना पाप नष्ट हो जाता है ॥ ६४-६५ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने कुशयुद्धवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें कुशके युद्धका वर्णन नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—कुशके बाणोंसे शत्रुघ्नका मूर्च्छित होना, शेष सैनिकोंका भागकर अयोध्यामें श्रीरामसे सूचित करना, श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणका सेनासहित युद्धस्थलमें पहुँचना

जैमिनिरुवाच

ततः प्राप्तो महाबाहुः शत्रुघ्नो धूनयन् धनुः ।
विव्याध नवभिर्बाणैः कुशं तं कोपपूरितः ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर महाबाहु शत्रुघ्न अपने धनुषको कँपाते हुए वहाँ आ पहुँचे और क्रोधमें भरकर उन्होंने उस कुशको नौ बाणोंसे बींध दिया ॥ १ ॥

ततः कुशोऽपि बलवान् रथं साश्वं व्यचूर्णयत् ।
शत्रुघ्नं हृदि विव्याध शरेणानतपर्वणा ॥ २ ॥
पुनश्च षष्ट्या विव्याध नाराचानां स्तनान्तरे ।

तब बलवान् कुशने भी घोड़ेसहित शत्रुघ्नके रथको तोड़कर चूर्ण कर दिया और फिर एक झुकी हुई गाँठवाले बाणसे उनके हृदयको घायलकर पुनः उनकी छातीमें साठ बाणोंसे प्रहार किया ॥ २½ ॥

सोऽतिविद्धस्तु शत्रुघ्नो रथोपस्थे पपात ह ॥ ३ ॥
यथा मत्तो हि मातङ्गः स्खलितः पर्वतेऽपतत् ।
हतशेषाश्च ये योधास्तेऽप्ययोध्यां ययुर्द्रुतम् ॥ ४ ॥

उस प्रहारसे अत्यन्त घायल होकर शत्रुघ्न रथके पिछले भागमें गिर पड़े, मानो कोई मदमत्त गजराज पर्वतपर फिसलकर गिर पड़ा हो । तब जो योधा मरनेसे बच गये थे, वे वेगपूर्वक अयोध्याकी ओर भाग चले ॥ ३-४ ॥

अथ मूर्च्छां विहायासौ लवोऽपश्यत् स्वबान्धवम् ।
उत्थाय परिरभ्यैनं कुशं वीरं जहर्ष च ॥ ५ ॥

इधर जब लवकी मूर्च्छा टूटी, तब उसने अपने भाई वीरवर कुशको देखा, फिर तो उसने उठकर भाईका आलिङ्गन किया, जिससे उसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ५ ॥

उवाच च कुशं भ्रातर्धारयामि तुरङ्गमम्।
तेनानुनीतः स लवो बबन्धे तं तुरङ्गमम् ॥ ६ ॥

तत्पश्चात् उसने कुशसे कहा—'भैया ! क्या मैं घोड़ेको पकड़ लूँ ?' तब कुशकी अनुमति पाकर लवने पुनः उस घोड़ेको बाँध लिया ॥ ६ ॥

उभौ तौ भ्रातरौ युक्तौ यथा वायुविभावसू।
प्रतीक्षमाणौ वीराणामागमं तस्थतुर्बलात् ॥ ७ ॥

तदनन्तर वायु और अग्निकी भाँति वे दोनों भाई एक साथ होकर वीरोंके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए अपने बलके भरोसे डटकर खड़े हो गये ॥ ७ ॥

जैमिनिरुवाच

मृतशेषाश्च ये योधास्ते गत्वा राममब्रुवन्।
समासीनं दीक्षितं च मृगशृङ्गपरिग्रहम् ॥ ८ ॥
त्वचं रुरोर्वसानं च दण्डधारं सुमेखलम्।
भ्रातृभ्यां सहितं शूरं मुनिभिः परिवारितम् ॥ ९ ॥
तिलाज्यहोमसम्भूतधूमेनारुणलोचनम् ।
सुवर्णसीतया युक्तं मण्डपस्थमिदं वचः ॥ १० ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! उधर जो सैनिक मरनेसे बच गये थे, उन्होंने अयोध्यामें श्रीरामके पास जाकर पुकार मचायी । उस समय श्रीराम यज्ञकी दीक्षा ग्रहणकर बैठे हुए थे । मृगका सींग ही उनका परिग्रह था । वे रुरुनामक मृगके चर्मको धारण किये हुए थे । उनके हाथमें दण्ड था और कमरमें मेखला सुशोभित थी । दोनों भाइयों (भरत और लक्ष्मण) सहित शूरवीर राम मुनियोंसे घिरे हुए थे । तिल और घीके हवनसे उठे हुए धुएँसे उनके नेत्र लाल हो रहे थे । वे स्वर्णमयी सीताके साथ मण्डपमें विराजमान थे । उन श्रीरामके पास जाकर योद्धाओंने इस प्रकार कहा—॥८–१०॥

योद्धा ऊचुः

हे राम तेऽश्वः पृथिवीं चचार
वीरोऽपि कश्चिन्न दधार तं पुनः।
एकोऽग्रहीत् त्वादृश एव बालक-
स्तेनास्मदीयं निहतं बलं च ॥ ११ ॥

योधा बोले—महाराज राम ! आपका अश्व पृथ्वीपर विचर रहा था, उसे किसी भी वीरने नहीं पकड़ा; परंतु एक बालकने, जिसकी आकृति आप-जैसी ही है, उस घोड़ेको बाँध लिया और उसने हमारी सेनाका संहार भी कर डाला ॥

धृतः कथंचित् तव चानुजेन
छित्त्वा धनुः श्रान्ततनुर्हि बालः।
तस्यापरो बन्धुरदीनसत्त्वः
प्राप्तः स चापासिधरो बलीयान् ॥ १२॥

तब आपके अनुज शत्रुघ्नने उस थके हुए शरीरवाले बालकके धनुषको काटकर किसी प्रकार उसे पकड़ लिया, इतनेमें ही उसका दूसरा भाई, जो उदार पराक्रमी एवं अत्यन्त बलवान् है, धनुष और तलवार धारण किये वहाँ आ पहुँचा ॥

तेनापि शेषं निहतं तवोग्रं
सैन्यं च सेनापतिना समेतम्।
तस्मिन् हते कश्मलमाशु सैन्यं
जगाम सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ॥ १३ ॥

उसने भी बची-खुची आपकी भयंकर सेनाको सेनापतिसहित मार गिराया । सेनाध्यक्षके मारे जानेपर सारी सेना कष्टमें पड़ गयी और शीघ्र ही दिशाओं-विदिशाओंमें भाग चली ॥

जैमिनिरुवाच

तेषां तद् वचनं श्रुत्वा रामो विस्मयमागतः।
उवाच किमयं जल्पो युष्माकं किमुत भ्रमः ॥ १४ ॥
पैशाच्यं किमु युष्माकं शत्रुघ्नः केन पात्यते ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! सैनिकोंकी वह बात सुनकर श्रीराम आश्चर्यचकित होकर बोले—'क्या तुमलोग यह बकवाद कर रहे हो या तुम्हें भ्रम हो गया है, अथवा तुमलोगोंपर पिशाच सवार हो गया है, जो ऐसी बातें कह रहे हो ? भला, शत्रुघ्नको कौन गिरा सकता है ?' ॥१४½॥

योधा ऊचुः

न जल्पोऽस्मासु राजेन्द्र न भ्रमो न पिशाचता ॥१५॥
स्मृतो यैस्त्वं सकृद् राम न जल्पो न पिशाचता ।
भ्रमो न विद्यते तेषां जायते ज्ञानमुत्तमम् ॥ १६ ॥
साक्षाद् दृष्टे त्वयि विभो भ्रमोऽस्मासु कथं भवेत्।
जल्पः पिशाचता वापि कुतः स्याद् रघुनन्दन ॥१७॥

योधाओंने कहा—राजेन्द्र ! न हम बकवाद कर रहे हैं, न हमें भ्रम है और न पिशाच ही लगा है। श्रीराम ! जो एक

बार भी आपका स्मरणमात्र कर लेते हैं, उनकी बकवाद, पिशाचता और भ्रान्तिका नाश हो जाता है और उन्हें उत्तम ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, फिर विभो! हमलोग तो आपका साक्षात् दर्शन कर रहे हैं, अतः रघुनन्दन ! हमें भ्रम कैसे हो सकता है ? बकवाद अथवा पिशाचता भी कहाँसे आयेगी ? ॥

रणे शेते स शत्रुघ्नः शिशोर्बाणैः प्रपीडितः ।
ततः सुदुःखितो रामो विलपन्निदमब्रवीत् ॥ १८ ॥

वास्तवमें उस शिशुके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर शत्रुघ्न रणभूमिमें सो रहे हैं । तब श्रीराम अत्यन्त दुखी होकर विलाप करते हुए यों कहने लगे ॥ १८ ॥

राम उवाच

विप्रद्विट् लवणो येन घातितो निशितैः शरैः ।
मदीयं वचनं कर्ता स शत्रुघ्नोऽर्भकैर्हतः ॥ १९ ॥

श्रीराम बोले—हाय ! जिसने अपने पैने बाणोंसे ब्राह्मणद्रोही लवणासुरका वध किया था, जो मेरी आज्ञाका पालन करनेवाला था, उस शत्रुघ्नको बच्चोंने मार डाला ! ॥

केन दोषेण मे भ्राता ह्यवस्थां तादृशीं गतः ।
एहि लक्ष्मण भद्रं ते शृणु मे परमं वचः ॥ २० ॥

न जाने किस दोषके कारण मेरा भाई शत्रुघ्न ऐसी दशाको प्राप्त हुआ है ? लक्ष्मण ! तुम्हारा कल्याण हो ! अब तुम मेरे पास आओ और मेरी इस उत्तम बातको सुनो ॥

अहं हि दीक्षितो भ्रातर्न मया योद्धुमिष्यते ।
सैन्येन महता युक्तो भ्राता तिष्ठति यत्र ते ॥ २१ ॥
तत्र गत्वा प्रयोद्धव्यं मोच्योऽश्वः सत्त्वबान्धवः ।
तद्वाक्याल्लक्ष्मणस्तूर्णं प्रययौ सैनिकैः सह ॥ २२ ॥

प्यारे भाई ! मैंने यज्ञकी दीक्षा ले रखी है, इसलिये मेरा युद्ध करना उचित नहीं है; अतः तुम विशाल सेनाके साथ उस स्थानपर जाओ, जहाँ तुम्हारा भाई शत्रुघ्न पड़ा है । वहाँ जाकर तुम्हें विशेष उत्साहपूर्वक युद्ध करना चाहिये और यदि शत्रुघ्नके प्राण शेष हों तो उस भाई तथा अश्वको छुड़ाना चाहिये । श्रीरामकी आज्ञा पाकर लक्ष्मण तुरंत ही सैनिकोंके साथ प्रस्थित हुए ॥ २१-२२ ॥

ततो मत्ताश्च मातङ्गा रथाः काञ्चनभूषणाः ।
सादिनो नगरात् तस्मात् पत्तयश्च विनिर्ययुः ॥ २३ ॥

तदनन्तर मतवाले हाथी, सोनेके आभूषणोंसे विभूषित रथ, घुड़सवार और पैदल सैनिक अयोध्या नगरसे बाहर निकले ॥ २३ ॥

सर्वे रक्तपताकाश्च सर्वे रक्ताम्बरध्वजाः ।
चन्दनेनावलिप्ताङ्गा रणत्कङ्कणमण्डिताः ॥ २४ ॥

उन सब वीरोंकी पताकाएँ लाल वर्णकी थीं । उनके वस्त्र तथा ध्वज भी लाल रंगके ही थे । उनके शरीरपर चन्दनका अनुलेप लगा हुआ था और हाथ बजते हुए कंकणोंसे सुशोभित थे ॥ २४ ॥

वीरश्रीपरिणेतारो मालाभिर्बद्धमूर्द्धजाः ।
साक्षात् कालावताराः किं युद्धसंस्थामभीप्सवः ॥ २५ ॥

वे सभी विजयश्रीका वरण करना चाहते थे । उनके केश पुष्पमालाओंसे बँधे हुए थे । उन्हें देखकर मनमें यह प्रश्न उठता था कि क्या ये रणाङ्गणमें जानेकी इच्छावाले साक्षात् कालके अवतार हैं ? ॥ २५ ॥

युवानः श्मश्रुला वीरा युद्धशौण्डाः प्रहारिणः ।
श्वेताम्बरधराः सर्वे धीराः श्वेतपताकिनः ॥ २६ ॥
एकपत्नीव्रतयुता धर्मिष्ठाश्च जितेन्द्रियाः ।
निर्ययुर्नगरात् तस्माच्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ २७ ॥

वे सभी वीर नौजवान, मूँछवाले, युद्धकुशल, प्रहार करनेमें चतुर, श्वेतवस्त्रधारी, धैर्यसम्पन्न, श्वेत पताकाओंसे युक्त, एकपत्नीव्रती, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे । ऐसे सैकड़ों-हजारों वीर उस नगरसे बाहर निकले ॥ २६-२७ ॥

तेषामधिपतिर्ह्यासील्लक्ष्मणो बलवत्तरः ।
सेनानीः कालजिच्चासीद् धर्मिष्ठो ब्राह्मणप्रियः ॥ २८ ॥

उनके अधिपति महाबली लक्ष्मण थे और कालजित् सेनापति था, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी एवं धर्मपालनमें तत्पर रहनेवाला था ॥ २८ ॥

गच्छता तेन सैन्येन कृताः शुष्काः समुद्रगाः ।
सरितः पर्वताश्चूर्णीभूता वाजिखुरैर्दृढैः ॥ २९ ॥

आगे बढ़ती हुई उस सेनाने (जल पीकर) समुद्रगामिनी नदियोंको सुखा दिया और घोड़ोंके सुदृढ़ टापोंसे खुदकर पर्वत चूर-चूर हो गये ॥ २९ ॥

विपिनानि स्थलान्यासंस्तूर्णं शत्रुमुखे स्थितम् ।
तत्परिग्रहणैस्तैस्तु पयो न सरितामपि ॥ ३० ॥

बड़े-बड़े वन रौंदे जानेके कारण समतल भूमिके

समान हो गये । तृण शत्रुओंके मुखमें चला गया । उन सैनिकोंद्वारा जल ग्रहण कर लिये जानेपर नदियोंका जल समाप्त हो गया ॥ ३० ॥

चक्रै रथानामश्वानां खुरैः प्रादुरभूद् रजः ।
मेघानामुपरिष्टात् तद् रजः पङ्कीबभूव ह ॥ ३१ ॥

रथोंके पहियों एवं घोड़ोंकी खुरोंसे खुदी हुई धरतीसे धूल उड़ने लगी । वह धूल मेघोंके ऊपर पहुँचकर कीचड़के रूपमें बदल गयी ॥ ३१ ॥

तेन पङ्केन मेघेषु घनत्वमभवत् तदा ।
उच्चानां वारणानां च शुण्डादण्डैर्भृशं हताः ॥ ३२ ॥
घनाः शनैः पलायन्ते पङ्कभारविनामिताः ।

उस समय उस कीचके मिल जानेसे बादल घनीभूत हो गये । ऊपरसे तो वे कीचके भारसे झुके पड़ते थे और नीचेसे विशालकाय गजराजोंके शुण्डदण्डसे अत्यन्त आहत हो रहे थे, अतः वे मेघ धीरे-धीरे इधर-उधर भागने लगे ॥ ३२½ ॥

पुरस्तादुत्प्लवन्ति स्म खड्गचर्मधरा नराः ॥ ३३ ॥
अश्ववाहाः प्रधावन्ति कुर्वन्तो विविधा गतीः ।
मेघनिर्घोषगम्भीरं गर्जन्तः प्रययू रथाः ॥ ३४ ॥
कम्पयन्तो धरां नागाः पर्वता इव निर्ययुः ।

ढाल-तलवार धारण करनेवाले पैदल सैनिक आगे-आगे उछलने-कूदने लगे । घुड़सवार नाना प्रकारकी चालें दिखाते हुए दौड़ लगाने लगे । रथ मेघकी गड़गड़ाहटके समान गम्भीर गर्जना करते हुए आगे बढ़ने लगे और पर्वताकार विशालकाय गजराज पृथ्वीको कँपाते हुए चलने लगे ॥ ३३-३४½ ॥

जैमिनिरुवाच

बबृंहिरे गजा मत्ता हया युद्धे जिहेषिरे ॥ ३५ ॥
जगर्जिरे रथाश्चक्रैः पत्तयश्च डिडिम्बिरे ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! युद्धस्थलमें मतवाले गजराज चिग्घाड़ने और घोड़े हींसने लगे, रथोंके पहियोंसे घरघराहटकी आवाज होने लगी तथा पैदल सैनिक सिंहनाद करने लगे ॥ ३५½ ॥

ततः प्राप्तमनीकं तल्लक्ष्मणस्य भयानकम् ।
यत्रासौ मूर्च्छितः शेते शत्रुघ्नः सैनिकैः सह ॥ ३६ ॥

तदनन्तर लक्ष्मणकी वह भयंकर सेना उस स्थानपर जा पहुँची, जहाँ सैनिकोंसहित शत्रुघ्न मूर्च्छित होकर सो रहे थे ॥

ततः सुमित्रातनयः पुरस्ता-
ज्ज्येष्ठो ययौ कालजिता समेतः ।
ददर्श वीरं विकलं सुकेशं
शत्रुघ्नमात्यन्तिकजीवशेषम् ॥ ३७ ॥

फिर तो सुमित्राके ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मण कालजित्‌के साथ आगे बढ़े । उस समय उन्होंने सुन्दर केशवाले वीरवर शत्रुघ्नको छटपटाते हुए देखा । उनके प्राणमात्र शेष रह गये थे ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने लक्ष्मणागमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसङ्गमें युद्धस्थलमें लक्ष्मणका आगमननामक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—कुश और लवकी बातचीत, धनुषके लिये लवद्वारा सूर्यदेवकी स्तुति और सूर्यका उसे धनुष प्रदान करना, लवका भयंकर पराक्रम, लवद्वारा मन्त्री सुज्ञके दस पुत्रोंका तथा राक्षस रुधिराक्षका वध

जैमिनिरुवाच

तत् सैन्यं भीषणं दृष्ट्वा तत्प्रभुं लक्ष्मणं तथा ।
उवाच निर्भयो वीरः शत्रूणामङ्कुशः कुशः ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर उस भयंकर सेना तथा उसके स्वामी लक्ष्मणको देखकर शत्रुओंके लिये अङ्कुशके समान कष्टदायक वीरवर कुश निर्भय होकर कहने लगा—॥ १ ॥

किमिदानीं च कर्तव्यं लव सैन्यं समागतम् ।
वारणानां रथानां च संख्यां कर्तुं न पार्यते ॥ २ ॥

'लव ! सेना तो आ गयी; अब हमलोगोंको क्या करना

चाहिये ? इस सेनामें इतने रथ और हाथी हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती' ॥ २ ॥

लव उवाच

युद्धमत्र प्रकर्तव्यं हन्तव्याः सैनिकास्त्वमी ।
कूष्माण्डफलवद् भेद्या रथाश्छेद्या रसालवत् ॥ ३ ॥
शिरांसि पक्वफलवत् पातनीयानि भूतले ।

तब लव बोला—भैया ! इस समय युद्ध करना ही हमलोगोंका कर्तव्य है । इन सैनिकोंको कुम्हड़ेकी तरह विदीर्ण कर डालना चाहिये । रथोंको आमकी भाँति काट डालना चाहिये और वीरोंके मस्तकोंको पके हुए फलकी तरह भूतलपर गिरा देना चाहिये ॥ ३½ ॥

भ्रातः कुश महाबाहो समग्रस्य बलस्य ते ॥ ४ ॥
न योग्यमेतत् सैन्यं स्यादगस्त्यस्येव सागरः ।
न च सिंहस्य पुरतो जम्बूकालिः प्रसर्पति ॥ ५ ॥

महाबाहु भैया कुश ! जैसे अगस्त्यजीके सामने सागर नहींके बराबर है, उसी तरह आपके सम्पूर्ण बलके समक्ष इस सेनाकी क्या योग्यता है ? भला, कहीं सिंहके सामने गीदड़ोंका दल आगे बढ़ सकता है ? ॥ ४-५ ॥

पुण्यां भागीरथीं दृष्ट्वा पापराशिः क्षयं व्रजेत् ।
तथा त्वां समरे सेना दृष्ट्वा शीघ्रं विनश्यति ॥ ६ ॥
केवलं श्रोत्रियैरेव धार्यस्त्वं न च सैनिकैः ।
अहं हि वाहिनीवेगान्न भग्नः स्यां कथंचन ॥ ७ ॥

जैसे परम पावनी गङ्गाजीका दर्शन करके पापराशिका नाश हो जाता है, उसी तरह समरभूमिमें आपको देखकर इस सेनाका शीघ्र ही विनाश हो जायगा; क्योंकि आपको तो केवल श्रोत्रिय ब्राह्मण ही धारण कर सकते हैं, ये सैनिक आपके वेगको नहीं सह सकते । इधर मैं भी इस सेनाके वेगसे किसी प्रकार पीछे नहीं हट सकता ॥ ६-७ ॥

उत्तिष्ठ धनुरुद्यम्य बाणान् योजय मा चिरम् ।
अहं सैन्यमिदं सर्वं रुणध्मि निशितैः शरैः ॥ ८ ॥
किं करोमि धनुश्छिन्नं ततः सूर्यमुदैक्षत ।
लवो निश्चलया दृष्ट्या मनसा प्रार्थयन् धनुः ॥ ९ ॥

अतः उठिये और धनुष उठाकर उसपर बाण संधान कीजिये । अब विलम्ब मत कीजिये । मैं इस सारी सेनाको अपने तीखे बाणोंसे आच्छादित कर सकता हूँ; परंतु क्या करूँ, मेरा धनुष तो कट गया है । तदनन्तर लव मनमें धनुषके लिये प्रार्थना करता हुआ एकटक दृष्टिसे सूर्यकी ओर देखने लगा ॥ ८-९ ॥

लव उवाच

नमः सवित्रे सूर्याय पूष्णे ज्योतिष्मते नमः ।
नमः सप्ततुरङ्गाय नित्यं व्योमचराय च ॥ १० ॥

(मन-ही-मन प्रार्थना करते हुए) लवने कहा—सूर्यदेव ! आप सविता (जगत्को उत्पन्न करनेवाले) और सूर्य (प्रेरक) हैं, आपको नमस्कार है । पूषा (पुष्टिदायक) एवं प्रकाशपुञ्ज आपको प्रणाम है । आप सात घोड़ोंवाले रथपर बैठकर नित्य आकाशमें विचरते रहते हैं, आपको नमस्कार है ॥ १० ॥

मेषादीनामधीशाय मासि मासि नमो नमः ।
अयनद्वयकर्त्रे च प्रकाशाय नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

आप मास-मासमें क्रमशः मेष आदि राशियोंके स्वामी होते रहते हैं, आपको बारंबार अभिवादन है । आप उत्तरायण और दक्षिणायनरूप दो अयनोंके प्रवर्तक और प्रकाशरूप हैं, आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥

मूकान्धबधिराणां च वाङ्नेत्रश्रोत्रदाय च ।
शिरोर्तिशूलकुष्ठानां नाशकाय नमोऽस्तु ते ॥ १२ ॥

आप गूँगों, अन्धों और बहरोंको वाक्शक्ति, दृष्टिशक्ति, और श्रवणशक्ति प्रदान करनेवाले तथा सिरकी पीड़ा, शूल और कुष्ठरोगके विनाशक हैं, आपको नमस्कार है ॥ १२ ॥

नमः सुवर्णवर्णाय सहस्रकिरणाय च ।
जगतामेकनेत्राय अथते भास्कराय च ॥ १३ ॥

जिनकी कान्ति स्वर्णके समान है, जो सहस्र किरणोंसे सम्पन्न और जगत्के प्राणियोंके लिये एकमात्र नेत्रस्वरूप हैं, उन भगवान् भास्करको प्रणाम है ॥ १३ ॥

दिवाकराय पिङ्गाय पयःस्रष्ट्रे घनाय तु ।
नमः पर्यायरूपाय जन्मत्राणक्षयाय ते ॥ १४ ॥

जो दिनके प्रवर्तक हैं, जिनके शरीरकी कान्ति पीली है, जो जलके स्रष्टा और मेघस्वरूप हैं तथा (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके) क्रमके स्थापक और जगत्की उत्पत्ति, रक्षा और संहार करनेवाले हैं, उन सूर्यदेवको नमस्कार है ॥

ऋग्वेदरूपिणे तुभ्यं नमो ब्राह्मणरूपिणे ।
यजुःसामाथर्वकर्त्रे पुराणानुप्रकाशिने ॥ १५ ॥

ऋग्वेद जिनका स्वरूप है, जो ब्राह्मणरूपमें प्रकट होते हैं तथा यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, पुराण और आगमके कर्ता अर्थात् प्रवर्तक हैं, उन सूर्यदेवको प्रणाम है ॥ १५ ॥

गाथेतिहासकर्त्रे ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणे ।
नमो विश्वस्वरूपाय रुद्ररूपाय ते नमः ॥ १६ ॥

आप कथा-इतिहासका ज्ञान प्रदान करनेवाले और ब्रह्म-स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप विश्वस्वरूप और रुद्र-रूप हैं, आपको बारंबार प्रणाम है ॥ १६ ॥

विश्वस्य वाञ्छितकराय मनोरमाय
विश्वेश्वराय पुरुषाय सदामलाय ।
हंसाय चण्डघृणये मणिकुण्डलाय
नौम्याहवे जयकरं धनुरद्य मेऽस्तु ॥ १७ ॥

भगवन्! आप विश्वके प्राणियोंके अभीष्टदाता, मनमें रमण करनेवाले, विश्वेश्वर, आदिपुरुष, सदा मलरहित और हंसस्वरूप हैं। आप प्रचण्ड किरणोंवाले तथा मणियोंके कुण्डलोंसे विभूषित हैं, मैं आपके चरणोंमें नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ। सूर्यदेव! आज आपकी कृपासे मुझे युद्ध-स्थलमें विजय दिलानेवाला धनुष प्राप्त हो ॥ १७ ॥

जैमिनिरुवाच

स्तोत्रेणानेन संतुष्टो रविर्दिव्यं शरासनम् ।
ददौ लवाय सौरं च पठतां श्रेय उत्तमम् ॥ १८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! इस स्तोत्रद्वारा स्तवन करनेसे सूर्यदेव प्रसन्न हो गये। उन्होंने लवको एक दिव्य धनुष प्रदान किया; क्योंकि सूर्य-स्तोत्रका पाठ करनेवालोंको उत्तम कल्याणकी प्राप्ति होती ही है ॥ १८ ॥

सुवर्णपट्टै रुचिरैर्निबद्धं सगुणं दृढम् ।
धनुः प्राप्य महाबाहुर्लवः कुशमथाब्रवीत् ॥ १९ ॥

तब सुन्दर एवं चमकीले स्वर्णपत्रसे बँधे हुए प्रत्यञ्चा-सहित उस मजबूत धनुषको पाकर महाबाहु लवने कुशसे कहा ॥

लव उवाच

उपदिष्टं हि यत् स्तोत्रं मुनिना गुरुणा मम ।
सौरं तज्जपितं भ्रातस्तस्माल्लब्धं मया धनुः ॥ २० ॥

लव बोला—भैया! मेरे गुरु मुनि वाल्मीकिने मुझे जिस सूर्यसम्बन्धी स्तोत्रका उपदेश दिया था, मैंने उसीका जप किया है। उसीके प्रभावसे मुझे इस धनुषकी प्राप्ति हुई है ॥ २० ॥

यद् यदस्त्रमयं वस्तु तदहं प्राप्तवान् महत् ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं संजग्माते महाबलौ ॥ २१ ॥

यहाँतक कि जो-जो अस्त्रसम्बन्धी महान् वस्तुएँ हैं, वे सभी मुझे प्राप्त हो गयी हैं। इस प्रकार बातें करके वे दोनों महाबली वीर युद्धके लिये चले ॥ २१ ॥

दग्धुं सैन्याटवीं किं तौ प्राप्तौ वायुविभावसू ।
तौ प्रविष्टौ चमूं घोरां लक्ष्मणेनाभिपालिताम् ॥ २२ ॥

(उन्हें देखकर ऐसा संदेह होता था कि) क्या वायु और अग्नि एक साथ मिलकर सेनारूपी वनको भस्म करनेके लिये आ पहुँचे हैं? तत्पश्चात् उन दोनोंने लक्ष्मणद्वारा सुरक्षित उस भयंकर सेनामें प्रवेश किया ॥ २२ ॥

वर्षमाणौ शरान् घोरान् जीमूताविव पर्वते ।
आवर्तः सुमहानासीत् तयोः सैन्ये प्रविष्टयोः ॥ २३ ॥
मैनाकमन्दराभ्यां तु मथ्यमान इवार्णवे ।
सिंहनादात् तयोरेव योजनार्धं गतं बलम् ॥ २४ ॥

फिर तो वे दोनों पर्वतपर जलकी वृष्टि करनेवाले दो मेघोंकी भाँति भयंकर बाण बरसाने लगे। उन दोनोंके सेनामें प्रवेश करनेपर सैनिक एक ही स्थानपर ऐसे चक्कर काटने लगे, मानो मैनाक और मन्दर नामक दो पर्वतोंसे मथे जानेपर सागरमें भँवरें उठ रही हों। पुनः उनके सिंहनाद करनेपर वह सेना दो कोस पीछे हट गयी ॥ २३-२४ ॥

कालजिल्लक्ष्मणौ क्रुद्धौ रुरुधाते शरैः कुशम् ।
लक्ष्मणस्य च सैन्येन लवो रुद्धोऽतिपौरुषः ॥ २५ ॥

तब कालजित् और लक्ष्मण—इन दोनोंने कुपित होकर कुशको बाणवर्षा करके आगे बढ़नेसे रोक दिया और लक्ष्मण-की सेनाने प्रबल पुरुषार्थी लवको घेर लिया ॥ २५ ॥

भ्रम्यो गजानां हि शतेन जात-
स्ततोऽधिकास्ता हि शतं शतेन ।
गजे गजे तत्र रथा दशासन्
रथे रथे वाजिशतं बभूव ॥ २६ ॥
हरौ हरौ पत्तिशतं हि तस्था-
वेवं भ्रमीणां शतकेन रुद्धः ।

लवके ऊपर पहला घेरा सौ हाथियोंका था। उसके पीछे दस हजार हाथियोंकी कतार थी। प्रत्येक हाथीके पीछे दस रथ, प्रत्येक रथके पीछे सौ घोड़े और प्रत्येक घोड़ेके पीछे सौ

पैदल सैनिक खड़े थे। इस प्रकारके सौ घेरोंसे उस सेनाने लवको घेर लिया था ॥ २६½ ॥

ततो निजघ्नुः शरवज्रमुद्गरैः
प्रासैर्लवं ते शतशश्च योधाः ॥ २७ ॥
गदासिशक्त्यृष्टिपरश्वधैश्च
कुन्तैस्तथा सम्भ्रमवाजियुक्ताः ।
पाशैः करग्राहकरैश्च बालमेका-
किनं ते परिवव्रुरेनम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर उत्तम घोड़ोंपर सवार हुए सैकड़ों योधा उस अकेले बालक लवको घेरकर उसपर बाण, वज्रके समान मुद्गर, प्रास, गदा, तलवार, शक्ति, ऋष्टि, फरसे, भाले और हाथोंको बाँध देनेवाले पाशोंसे प्रहार करने लगे ॥ २७-२८ ॥

द्विषो निजघ्ने निशितैः क्षुरप्रैः
शिरांसि भूमावपतन् स्फुरन्ति ।
लवो लवेनाहवकर्म कुर्वन्
ननाद कल्पान्तकरो यथा यमः ॥ २९ ॥

तब लवने लव (क्षण) मात्रमें ही अपने तीखे क्षुरप्रोंके प्रहारसे उन शत्रुओंका सफाया कर दिया। उनके मस्तक पृथ्वीपर गिरकर छटपटाने लगे। युद्धमें यों संहार मचाता हुआ लव सिंहनाद करने लगा। उस समय उसका स्वरूप कल्पान्तकारी यमराजके समान दीख पड़ता था ॥ २९ ॥

शतं शतेन विव्याध द्विशतं द्विशतेन च ।
सहस्रार्धं तदर्धेन सहस्रमयुतेन च ॥ ३० ॥
वीराणामहनत् क्रुद्धः प्रयुतं प्रयुतेन च ।

उसने सौ वीरोंको सौ बाणोंसे, दो सौको दो सौसे,पाँच सौको पाँच सौसे और एक हजारको दस हजार बाणोंसे बींध दिया। फिर कुपित हुए लवने एक लाख वीरोंको उतने ही बाण मारकर कालके हवाले कर दिया ॥ ३०½ ॥

जैमिनिरुवाच

चत्वारिंशद् भ्रमीर्हत्वा गजानां सिंहविक्रमः ॥ ३१ ॥
शरैः सम्भिन्नसर्वाङ्गो दिशः सर्वा व्यलोकयत् ।
इतः सैन्यं प्रचलितं रथवारणसंकुलम् ॥ ३२ ॥
लसत्खड्गप्रभाभिश्च श्यामीभूतं गजैरपि ।
ददर्श घोरं स लवो न कुशं पृष्ठतस्तथा ॥ ३३ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! उस समय लवका सम्पूर्ण अङ्ग बाणोंसे छिद गया था, फिर भी सिंहके समान पराक्रमी उस वीरने हाथियोंके चालीस घेरोंका संहार करके जब सारी दिशाओंकी ओर दृष्टि डाली, तब उसने देखा कि रथ और हाथियोंसे भरी-पूरी, चमकीली तलवारोंकी कान्तिसे प्रकाशित और हाथियोंके कारण काली-काली दीखती हुई वह भयंकर सेना तो यहाँसे विचलित हो उठी है, परंतु पीछेकी ओर कुश नहीं दीख रहे हैं ॥ ३१—३३ ॥

तदा दध्यौ चिरं बालो भ्राता मे क्व गतः कुशः ।
इति चिन्तयतस्तस्य लवस्य धनुरुत्तमम् ॥ ३४ ॥
जहार राक्षसः क्रुद्धो मातुलो लवणस्य यः ।
रुधिराक्ष इति ख्यातो रामं शरणमागतः ॥ ३५ ॥

तब बालक लव बहुत समयतक विचार करता रहा कि मेरे भाई कुश कहाँ चले गये ? लव यों चिन्ता कर ही रहा था कि एक राक्षसने कुपित होकर उसके श्रेष्ठ धनुषका अपहरण कर लिया। वह राक्षस लवणासुरका मामा था और रुधिराक्ष नामसे प्रसिद्ध था। उस समय वह श्रीरामके शरणापन्न हो गया था ॥ ३४-३५ ॥

लवो जवात् पलायन्तं धनुरादाय राक्षसम् ।
तिष्ठ तिष्ठेति चोवाच मत्तो जीवन् क्व यास्यसि ॥ ३६ ॥

जब लवने उस राक्षसको धनुष लेकर वेगपूर्वक भागते देखा, तब 'खड़ा रह, खड़ा रह' कहकर ललकारते हुए उससे कहा—'अरे ! तू मुझसे जीवित बचकर कहाँ जायगा' ॥ ३६ ॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं चक्रं जग्राह पाणिना ।
जनन्याश्चरणौ चित्ते चिन्तयित्वा महाभुजः ॥ ३७ ॥

ऐसी बात कहकर महाबाहु लवने अपनी माताके चरणोंका हृदयमें ध्यान किया और एक चक्र हाथमें उठा लिया ॥ ३७ ॥

स चक्रमादाय खमुत्पपात
श्येनो यथा भक्ष्यमिव प्रगृह्णन् ।
शिखीव पुष्पान् क्षतजावलिप्तो
रराज साक्षादिव चक्रपाणिः ॥ ३८ ॥

तब रक्तसे लथपथ शरीरवाला लव अपने शिकारको पकड़नेके लिये झपटते हुए बाजकी भाँति एवं पुष्प लेकर उड़ते हुए मोरके समान उस चक्रको लेकर आकाशमें उछला। उस समय उसकी शोभा साक्षात् चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी-सी हो रही थी ॥ ३८ ॥

गगनस्थं लवं दृष्ट्वा योधा बिभ्युः पतेदिति ।
ततश्चापेषु रुचिराञ्छरांस्ते युयुजुर्भयात् ।
केचिद् दधुश्च चर्माणि सुदृढानि स्वमूर्धसु ॥ ३९ ॥

उस समय लवको आकाशमें स्थित देखकर सभी योद्धा भयभीत हो गये कि कहीं यह हमारे ऊपर न गिर पड़े। फिर तो वे भयके कारण अपने धनुषोंपर सुन्दर बाणोंका संधान करने लगे। किसी-किसीने अपने मस्तकपर अत्यन्त मजबूत बनी हुई अपनी ढालको ही रख लिया ॥ ३९ ॥

अस्मानुपरि वीरोऽसौ पतिष्यति न संशयः ।
इति कृत्वा मतिं केचित् स्यन्दनस्याध आगमन् ॥४०॥

'निस्संदेह यह वीर हमारे ऊपर आक्रमण करेगा' यों विचारकर कुछ सैनिक रथके नीचे आकर छिप गये ॥ ४० ॥

बाणनिर्भिन्नवर्ष्माणो वारणा भुवि शेरते ।
तेषामुदरमध्यस्थाः केचिच्छन्ना महारथाः ॥ ४१ ॥

जिनके शरीर बाणोंसे विदीर्ण हो गये थे, ऐसे बहुत-से गजराज मरकर पृथ्वीपर पड़े थे । कुछ महारथी भागकर उन्हींके उदरके खोड़रमें जा छिपे ॥ ४१ ॥

एवं स्म भीता वीरा ये तेऽप्येवं चक्रिरे तदा ।
अवशिष्टा महावीरा निर्यातास्तु दशैव हि ॥ ४२ ॥

इस तरह वहाँ जो अन्य वीर भयभीत हो गये थे, उन्होंने भी अपनी रक्षाका ऐसा ही उपाय किया । उस समय केवल दस ही महान् वीर शेष रह गये थे और वे ही पुनः युद्धके लिये आगे बढ़े ॥ ४२ ॥

राज्ञो दशरथस्यासीन्मन्त्री सुज्ञो हि तत्सुताः ।
जितश्रमो धार्मिकश्च सुकेतुः शत्रुसूदनः ॥ ४३ ॥
चन्द्रो मदः शलः कालो मल्लः सिंहश्च ते दश ।
विव्यधुः सायकैस्तीक्ष्णैर्लवं खे चक्रपाणिनम् ॥ ४४ ॥
दशभिर्दशभिर्बाणैश्चिच्छिदुश्चक्रमुच्छ्रिताः ।

राजा दशरथके एक मन्त्रीका नाम सुज्ञ (सुमन्त्र) था, वे दसों वीर उसीके पुत्र थे । उनके नाम थे—जितश्रम, धार्मिक, सुकेतु, शत्रुसूदन, चन्द्र, मद, शल, काल, मल्ल और सिंह । इन दसों वीरोंने चक्र हाथमें लिये हुए आकाशमें स्थित लवको तीखे बाणोंसे घायल करने लगे । उन अभिमानियोंमेंसे प्रत्येकने दस-दस बाण मारकर लवके चक्रको काट दिया ४३-४४½

छिन्नचक्रो लवः शीघ्रं जग्राह परिघं भुवि ॥ ४५ ॥
जघान मन्त्रिपुत्रांस्तान् परिघेण हसन्निव ।

चक्रके कट जानेपर लव पृथ्वीपर उतर आया और उसने शीघ्र ही एक परिघ उठा लिया तथा मुसकराते हुए-से उन मन्त्रिकुमारोंपर उस परिघसे आघात किया ॥ ४५½ ॥

ते छिन्नचर्मवर्माणो निपेतुः शोणितोक्षिताः ॥ ४६ ॥
वेदबाह्याः कुशास्त्रज्ञा विष्णुभक्तिविवर्जिताः ।
मातापित्रोर्भक्तिहीना नास्तिका रौरवे यथा ॥ ४७ ॥

फिर तो उनकी ढाल और कवच छिन्न-भिन्न हो गये, शरीर खूनसे सराबोर हो गया और वे उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े, जैसे वेदबहिष्कृत, कुत्सित शास्त्रके जानकार, विष्णु-भक्तिसे रहित और माता-पिताकी भक्तिसे हीन नास्तिक लोग रौरव नरकमें गिरते हैं ॥ ४६-४७ ॥

तावत् स राक्षसः प्राप्तो रुधिराक्षो गदां दधत् ।
गदया ताडयामास मूर्ध्नि तं लवमोजसा ॥४८॥

तबतक राक्षस रुधिराक्ष गदा हाथमें लिये हुए वहाँ आ पहुँचा और उसने बलपूर्वक लवके मस्तकपर उस गदासे प्रहार किया ॥ ४८ ॥

जगाम मूर्च्छां बालोऽसौ मुहूर्त्तं भूतलेऽपतत् ।
मूर्च्छां विहाय स लवस्तदा तस्थौ गजेन्द्रवत् ॥४९॥

उस गदाकी चोटसे बालक लव मूर्च्छित हो गया और दो घड़ीतक पृथ्वीपर पड़ा रहा । फिर मूर्च्छाके टूटनेपर वह गजेन्द्रकी भाँति उठकर खड़ा हो गया ॥ ४९ ॥

कुन्तमादाय भूमिस्थं प्रययौ राक्षसं प्रति ।
केशेष्वाक्षिप्य तं दुष्टं कुन्तेनाभ्यहरच्छिरः ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् वह एक भाला लेकर भूमिपर खड़े हुए उस राक्षसपर झपटा और उस दुष्टके केश पकड़कर उसने उस भालेसे उसका सिर काट लिया ॥ ५० ॥

स्वधनुर्जगृहे वीरः सूर्यदत्तं ननाद च ।
मुमोच निशितान् बाणान् सैन्यक्षयकरान् बहून् ५१

फिर वीरवर लव सूर्यदेवद्वारा दिये गये अपने धनुषको लेकर सिंहनाद करने लगा । उस समय उसने सेनाका संहार करनेवाले बहुत-से तेज धारवाले बाणोंकी वर्षा की ॥ ५१ ॥

ततः सैन्येन महता वेष्टितः पुनरेव सः ।
गर्भस्थो हि यथा जन्तुरज्ञानेन बहिः स्थितः ॥ ५२ ॥
वेष्ट्यते तद्वदप्येष तेन सैन्येन वेष्टितः ।

तत्पश्चात् उस विशाल सेनाने पुनः लवको घेर लिया । जैसे गर्भस्थ जीव बाहर आनेपर अज्ञानसे लिप्त हो जाता है, उसी तरह उस सेनाने भी लवको परिवेष्टित कर लिया॥५२½॥

तृणैरावेष्टितो वह्निस्तान्येव दहति ध्रुवम् ॥ ५३ ॥
तद्वत् स बालस्तत् सैन्यमदहत् कोपपूरितः ॥ ५४ ॥

परंतु जैसे घास-फूससे घिरी हुई आग निश्चय ही उसे जलाकर भस्म कर देती है, उसी तरह बालक लव क्रोधमें भरकर उस सेनाको भस्म करने लगा ॥ ५३-५४ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने लवयुद्धविजयवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें युद्धमें लवकी विजयका वर्णननामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—कुश और लक्ष्मणका युद्ध, कुशद्वारा कालजित्का वध और लक्ष्मणकी मूर्च्छा

जैमिनिरुवाच

कुशस्तं लक्ष्मणं दृष्ट्वा प्रययौ सिंहविक्रमः।
आयान्तं पञ्चभिर्बाणैर्लक्ष्मणोऽभिजघान तम्॥ १ ॥
तैस्ताडितः कुशो वीरस्त्विदं वचनमब्रवीत्।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उधर सिंहके समान पराक्रमी कुशने लक्ष्मणको देखकर उनपर आक्रमण कर दिया। तब कुशको अपनी ओर आते देखकर लक्ष्मणने उसपर पाँच बाणोंसे प्रहार किया। उन बाणोंसे पीड़ित होकर वीरवर कुश यों कहने लगा॥ १½॥

कुश उवाच

स्थिरो भव महावीर मा पदं पृष्ठतः कुरु॥ २ ॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं बाणं चैकं मुमोच सः।
तेन बाणेन स रथो बभ्राम घटिकाद्वयम्॥ ३ ॥
अतिभ्रमेण चत्वारो वाजिनः पञ्चतां ययुः।
ततोऽन्यं रथमारुह्य लक्ष्मणो मुमुचे शरान्॥ ४ ॥

कुश बोला—महावीर! अब तुम सावधान होकर खड़े हो जाओ, पीछे कदम मत हटाना। ऐसी बात कहकर कुशने एक बाण चलाया। उस बाणसे लक्ष्मणका रथ दो घड़ीतक घूमता ही रह गया और अत्यन्त वेगसे चक्कर काटनेके कारण चारों घोड़े मृत्युके ग्रास बन गये। तब लक्ष्मण दूसरे रथपर चढ़कर बाण छोड़ने लगे॥ २–४॥

द्वाभ्यां शराभ्यां चिच्छेद कवचं चातिनिर्मलम्।
किरीटं च त्रिभिर्बाणैस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ५ ॥

उन्होंने दो सायकोंसे कुशके अत्यन्त निर्मल कवचको तथा तीन बाणोंसे मुकुटको काट गिराया। यह एक अद्भुत-सी घटना हुई॥ ५॥

स भिन्नकवचो वीरो मुक्तत्वक् सर्पराडिव।
तस्मिन् रणे रराजाथ सीतासूनुर्गतक्लमः॥ ६ ॥

कवचके कट जानेपर भी सीताकुमार कुशके मनमें किसी प्रकारकी ग्लानि न हुई, प्रत्युत वह वीर उस युद्धस्थलमें केंचुलका परित्याग करके चमकनेवाले सर्पराजकी भाँति शोभा पाने लगा॥ ६॥

अब्रवील्लक्ष्मणं वीरः कुशो विनयपूर्वकम्।
द्विषद्भावं परित्यज्य मम भारस्त्वया हृतः॥ ७ ॥
उपकारः कृतो नूनं त्वया कर्ता तथाप्यहम्।
सैन्यभारो महानस्ति तव लक्ष्मण साम्प्रतम्॥ ८ ॥
तं सर्वं नाशयिष्यामि पश्य मे हस्तलाघवम्।

तत्पश्चात् वीरवर कुशने विनयपूर्वक लक्ष्मणसे कहा—'वीर! तुमने शत्रुभावका परित्याग करके (मेरा कवच काटकर) मेरे भारको दूर कर दिया है। यह तो तुमने मेरा उपकार ही किया है, अतः अब मैं भी निश्चय ही इस उपकारका बदला चुकाऊँगा। लक्ष्मण! इस समय तुम्हारे ऊपर सेनाका महान् भार है, अतः मैं उस सम्पूर्ण भारका विनाश कर दूँगा। अब तुम मेरे हाथोंकी फुर्ती देखो'॥ ७-८½॥

अथ सूक्तं जपन्नुच्चैराथर्वश्रुतिविश्रुतम्।
आग्नेयमस्त्रं मुमुचे सीतासूनुर्महाबलः॥ ९ ॥

तदनन्तर महाबली सीताकुमारने अथर्ववेदद्वारा प्रतिपादित सूक्तका उच्च स्वरसे जप करता हुआ आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया॥ ९॥

आग्नेयास्त्रात् ततो ज्वालाः प्रादुर्भूताः सहस्रशः।
ताभिस्तस्य रथो दग्धो लक्ष्मणस्य महात्मनः॥ १० ॥
सैन्यं दग्धं पताकाश्च वासांस्याभरणानि च।
ज्वलत्कञ्चुकिनो वीरा दग्धश्मश्रुशिरोरुहाः॥ ११ ॥
दह्यन्ते स्म सटा पुच्छं वाजिनां हंसवर्णिनाम्।
रथाश्चक्राणि दह्यन्ते छत्राणि चामराणि च॥ १२ ॥
आयुधानि च सर्वाणि दग्धान्यासन् हविर्भुजा।

उस आग्नेयास्त्रसे सहस्रों ज्वालाएँ प्रकट हुईं। उन ज्वालाओंसे महात्मा लक्ष्मणका रथ जल गया। सेनामें आग लग गयी, जिससे सैनिकोंके ध्वज, वस्त्र और आभूषण आदि जलकर भस्म हो गये। वीरोंके बख्तर, दाढ़ी-मूँछ और सिरके बाल स्वाहा हो गये। हंसके समान उज्ज्वल वर्णवाले घोड़ोंकी पूँछ तथा अयाल जलने लगे। रथ, पहिये, छत्र और चँवर भी भस्म होने लगे। यहाँतक कि उस आगने समस्त आयुधोंको जलाकर राखका ढेर बना दिया॥ १०–१२½॥

दह्यमानं ततो दृष्ट्वा सैन्यं शत्रुनिबर्हणः ॥ १३ ॥
लक्ष्मणः शमयामास तदस्त्रं वारुणास्त्रतः ।

तब शत्रुओंका संहार करनेवाले लक्ष्मणने अपनी सेनाको इस प्रकार भस्म होती देखकर वारुणास्त्रका प्रयोग करके उस आग्नेयास्त्रको शान्त कर दिया ॥ १३½ ॥

ततः कुशो महावीरो वायव्यं संदधे शरम् ॥ १४ ॥
वायव्यास्त्रेण ते सर्वे वीरा वियति डिडियरे ।
तदा रथा गजा मत्ताः पतन्त्यनिलरंहसा ॥ १५ ॥

तत्पश्चात् महान् वीर कुशने वायव्यास्त्रका संधान किया । तब उस वायव्यास्त्रसे उठी हुई वायुके वेगसे वे सभी वीर उड़कर आकाशमें चले गये तथा रथ और मदमत्त गजराज पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ १४-१५ ॥

जैमिनिरुवाच

सेनानीः कालजित् क्रुद्धो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ।
संहरिष्याम्यहं बालं वेलेव मकरालयम् ॥ १६ ॥
यावत् कनिष्ठो नायाति तावत् कुर्वे पराक्रमम् ।
इत्येवमुक्त्वा वचनं कुशं प्रायात् स कालजित् ॥ १७ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब सेनापति कालजित्ने कुपित होकर लक्ष्मणसे इस प्रकार कहा—'जैसे तटकी भूमि उमड़ते हुए समुद्रको रोक देती है, उसी तरह मैं इस बालकका संहार करूँगा और जबतक इसका छोटा भाई नहीं आ जाता है, तबतक मैं पराक्रम करता ही रहूँगा ।' ऐसी बात कहकर कालजित्ने कुशपर धावा कर दिया ॥१६-१७॥

सेनाध्यक्ष उवाच

त्वमद्य नूनं सम्प्राप्तो रामचन्द्रबलक्षयः ।
जातो यद्यपि कुर्वेऽहं कुशस्योन्मूलनं ध्रुवम् ॥ १८ ॥
कालजिद्भाषितं श्रुत्वा कुशो वचनमब्रवीत् ।

पुनः सेनाध्यक्षने कहा—कुश ! यद्यपि तुमने श्रीरामकी सेनाका विनाश कर दिया है, तथापि अब तुम मेरे सामने आ गये हो; अतः मैं अवश्य ही तुम्हें जड़से उखाड़ फेंकूँगा । कालजित्का कथन सुनकर कुश कहने लगा ॥ १८½ ॥

कुश उवाच

अजागलस्तनस्येव व्यर्थं नाम विभाव्यते ।
बधिरस्य यथा कर्णौ वृथा श्रवणवर्जितौ ॥ १९ ॥
बालानां हि यथा ब्रह्म तृणस्याग्निर्यथा वृथा ।
सेनाध्यक्षः कृतः केन त्वादृशो बहुजल्पकः ॥ २० ॥
त्वयि पश्यति रे मूढ सैन्यं हन्ति ममानुजः ।
बाणं छिन्धि मया मुक्तं तव जिह्वाविदारकम् ॥ २१ ॥

कुश बोला—सेनाध्यक्ष ! जैसे (दुग्धरहित होनेके कारण) बकरीके गलेमें लटकता हुआ स्तन, श्रवण-शक्तिरहित बहरेके दोनों कान, बालकोंको ब्रह्मका उपदेश और एक तिनकेमें लगी हुई आग व्यर्थ ही होती है, उसी तरह तेरा नाम तो निरर्थक ही प्रतीत होता है । तुझ-जैसे बकवादीको किसने सेनापति बना दिया ? रे मूर्ख ! देखता नहीं, तेरे सामने ही मेरा छोटा भाई लव तेरी सेनाका संहार कर रहा है ? अच्छा, अब मैं तेरी जिह्वाको काट देनेवाला बाण छोड़ता हूँ, तू इसे काट ॥ १९—२१ ॥

इत्युक्त्वा कालजिज्जिह्वामलुनादिषुणा कुशः ।
मौनी त्वं साम्प्रतं जातो वाहिन्यां संस्थितं लवम् ॥ २२॥
अनयाऽऽशु च सम्पूज्य त्वं मौनव्रतमाचर ।

ऐसा कहकर कुशने एक बाण मारकर कालजित्की जीभ काट डाली और पुनः इस प्रकार कहा—'अब तो तू मौनी हो गया; अतः अब तू शीघ्र ही इस जीभसे सेनाके मध्यमें स्थित मेरे भाई लवकी पूजा करके मौनव्रतका पालन कर' ॥

अत्यन्तं कालजित् क्रुद्धः शरेणानतपर्वणा ॥ २३ ॥
कुशं तं हृदये विद्ध्वा वामहस्तमताडयत् ।

तब कालजित्ने अत्यन्त कुपित होकर एक झुकी हुई गाँठ-वाले बाणसे कुशके हृदयको बींधकर पुनः उसके बायें हाथमें गहरी चोट पहुँचायी ॥ २३½ ॥

चिच्छेद तस्यापि कुशो बाणैर्हस्तं च दक्षिणम् ॥ २४ ॥
ततोऽर्धचन्द्रेण शिरश्चिच्छेदास्य सकुण्डलम् ।

तत्पश्चात् कुशने भी बाणोंकी मारसे उसके दाहिने हाथको काटकर पुनः एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसके कुण्डलमण्डित सिरका भी उच्छेदन कर दिया ॥ २४½ ॥

हते कालजिति प्रौढे कुशं सौमित्रिरभ्यगात् ॥ २५ ॥
वर्षन् बाणगणान् घोराञ्छालतालवटच्छिदः ।
कुशं जघान हृदये बाणैः षड्भिरथो दृढम् ॥ २६ ॥

प्रबल पराक्रमी कालजित्के मारे जानेपर सुमित्रानन्दन लक्ष्मण शाल, ताल और वटवृक्षोंका छेदन करनेवाले भयंकर बाणसमूहोंकी वर्षा करते हुए कुशपर चढ़ आये और फिर

उन्होंने सुदृढ पराक्रमी कुशके हृदयपर छः बाणोंसे प्रहार किया॥ २५-२६ ॥

शक्तिं चिक्षेप सौमित्रिः कुशं प्रति गदामपि ।
कुन्तं खड्गं च परशुं तोमरं चर्म चाक्षिपत् ॥ २७ ॥
कुशस्तु सप्तधा तानि शस्त्राणि परिचिच्छिदे ।
ननर्द सिंहवद् वीरस्तिष्ठ तिष्ठ शरान् सह ॥ २८ ॥

लक्ष्मणने कुशके ऊपर शक्ति और गदा भी चलायी तथा भाला, खड्ग, फरसा, तोमर और ढालका भी प्रयोग किया; परंतु कुशने उन सारे आयुधोंके सात-सात टुकड़े कर दिये। पुनः वह वीर सिंहके समान गर्जना करता हुआ बोला—'खड़े रहो, खड़े रहो, मेरे बाणोंको भी तो सहन करो' ॥

इत्येवमुक्त्वा नाराचान् पञ्च वाल्मीकिनार्पितान् ।
गार्ध्रपत्रान् सुनिशितान् विषमान् पन्नगानिव ॥ २९ ॥
ज्वलदग्निकणान् वीरः कुशो धनुषि संदधे ।

यों कहकर वीरवर कुशने अपने धनुषपर उन पाँच नाराचोंका संधान किया, जिन्हें वाल्मीकि मुनिने दिया था। वे गीधकी पाँखोंसे सुशोभित और अत्यन्त तेज धारवाले थे तथा छोड़े जानेपर सर्पोंकी तरह वक्रगतिसे चलते थे। उनकी कान्ति धधकती हुई आगकी चिनगारियोंकी-सी थी ॥

अथ मुक्ताः शरा व्योम्नि ज्वलन्तो मर्मभेदिनः ॥ ३० ॥
बिभिदुर्हृदयं तस्य लक्ष्मणस्य महात्मनः ।
सौमित्रिश्च पपातोर्व्यां सूर्यः खादिव निष्प्रभः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर धनुषसे छूटनेपर आकाशमें प्रकाशित होनेवाले उन मर्मभेदी बाणोंने महात्मा लक्ष्मणके हृदयको विदीर्ण कर दिया। तब लक्ष्मण प्रभाहीन होकर आकाशसे गिरते हुए सूर्यकी तरह पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३०-३१ ॥

जैमिनिरुवाच

ततः शुश्राव निनदं लवस्य स कुशो रणे ।
खड्गचर्मधरश्चायं पुप्लुवे पक्षिराडिव ॥ ३२ ॥
ददर्श तं लवं शूरं वेष्टितं गजपङ्क्तिभिः ।
खड्गेनाभ्यहनत् क्रुद्धो गजांश्च रथिनो बहून् ॥ ३३ ॥
भ्रमीर्जघान ताः सर्वाः क्षणाल्लवममोचयत् ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! तत्पश्चात् कुशने रणक्षेत्रमें लवकी गर्जना सुनी। फिर तो वह ढाल-तलवार लेकर पक्षिराज गरुडकी भाँति उछला और वहाँ पहुँचकर उसने देखा कि हाथियोंकी कतारोंने उस शूरवीर लवको घेर लिया है। तब उसने कुपित होकर तलवारसे ही बहुत-से गजराजों तथा रथी वीरोंका सफाया कर दिया और क्षणमात्रमें ही उन सभी घेरोंका नाश करके लवको छुड़ा लिया ॥ ३२-३३½ ॥

वाल्मीकेराश्रमे ताभ्यां सैन्यं सर्वं निपातितम् ॥ ३४ ॥
तस्थतुर्निर्भयौ वीरौ वीक्षमाणौ स्वमाश्रमम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके पास उन दोनों वीरोंने लक्ष्मणकी सारी सेनाको मार गिराया और फिर निर्भय होकर वे अपने आश्रमकी ओर देखते हुए खड़े हो गये ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने लक्ष्मणसेनापराजयो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें लक्ष्मणकी सेनाका पराजयनामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—श्रीरामका भरतकी सलाहसे दूतोंको आदेश देकर लक्ष्मणके पास भेजना, उसी समय घायल सैनिकोंका आना, श्रीरामका भरतको युद्धके लिये आदेश देना, भरतका हनुमान् आदि वानरों तथा विशाल सेनाके साथ वहाँ पहुँचना और हनुमान्‌जीद्वारा शत्रुघ्न और लक्ष्मणकी खोज करके उनकी सुरक्षा करना

जैमिनिरुवाच

गङ्गातीरे रामचन्द्रो दीक्षितो यज्ञमण्डपे ।
भरतं प्रत्युवाचाथ मुनिभिः परिवारितः ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उधर श्रीरामचन्द्रजी गङ्गा-तटपर बने हुए यज्ञमण्डपमें दीक्षा ग्रहण करके मुनियोंसे घिरे हुए बैठे थे। उस समय उन्होंने भरतजीसे कहा ॥१॥

श्रीराम उवाच

कथं नायाति वीरोऽसौ विजित्य हयहारिणौ ।
याभ्यां पराजयं प्राप शत्रुघ्नः स तवानुजः ॥ २ ॥

श्रीरामजी बोले—भाई भरत ! क्या कारण है कि जिन दोनों बालकोंसे तुम्हारे छोटे भाई शत्रुघ्न पराजित हो गये थे, घोड़ेका अपहरण करनेवाले उन बच्चोंको जीतकर वीरवर लक्ष्मण अभीतक नहीं आये ? ॥ २ ॥

सौमित्रिं वीक्ष्य संग्रामे त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
स्वप्नमध्ये विलीयेत प्रत्यक्षं कः सहिष्यति ॥ ३ ॥

भला, जिस लक्ष्मणको स्वप्नमें भी संग्राममें उपस्थित देखकर चराचरसहित त्रिलोकी विलीन हो जाती है, उसके वेगको प्रत्यक्ष रूपमें कौन सहन कर सकेगा ? ॥ ३ ॥

तमद्य बहुभिर्वीरैः सेवितं रोषपूरितम् ।
पतनादनुजस्यापि मयाऽऽज्ञप्तं न तौ क्षमौ ॥ ४ ॥
योधितुं वनजावज्ञौ चपलौ नाथवर्जितौ ।
लक्ष्मणस्य भयात् त्रस्तौ शरणं कं गमिष्यतः ॥ ५ ॥

इस समय तो वह अपने अनुज शत्रुघ्नके धराशायी होनेके कारण रोषमें भरा हुआ है, ऊपरसे उसे मेरी आज्ञा भी प्राप्त हो गयी है और उसके साथ बहुत-से वीर भी हैं—ऐसी दशामें उस लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिये वे दोनों वनवासी बालक समर्थ नहीं हो सकते; क्योंकि वे युद्धकलासे अनभिज्ञ एवं चपल हैं, साथ ही उनका कोई रक्षक भी नहीं है । अब वे लक्ष्मणके भयसे उद्विग्न होकर किसकी शरणमें जायँगे ? ॥ ४-५ ॥

आनयिष्यति सौमित्रिः शत्रुघ्नं धर्मलोकतः ।
स्वप्रतापेन पतितं जनन्यै दर्शयिष्यति ॥ ६ ॥

लक्ष्मण तो अपने प्रतापके बलपर युद्धमें गिरे हुए शत्रुघ्नको धर्मराजके लोकसे भी वापस लाकर माता सुमित्राको दिखा सकता है ॥ ६ ॥

लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा संहरन्तं स्वबालकौ ।
प्रार्थयिष्यत्यनाथा कं रक्षणाय तयोः प्रसूः ॥ ७ ॥

इस समय उन बालकोंकी माता जब यह सुनेगी कि लक्ष्मण क्रोधमें भरकर मेरे बच्चोंका संहार कर रहे हैं, तब वह अबला उनकी रक्षाके लिये किससे प्रार्थना करेगी ? ॥ ७ ॥

कुतः प्राप्तौ स्वनाशाय दारकौ विघ्नकारकौ ।
दिनद्वयं विहीनं मे वर्षमध्ये तुरङ्गमः ॥ ८ ॥
शत्रुघ्नरक्षितः प्राप याभ्यां पार्श्वे निबन्धनम् ।

अब वर्षभरमें केवल दो ही दिन शेष रह गये हैं, इसी बीचमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले ये बालक अपना ही विनाश करनेके लिये न जाने कहाँसे आ पहुँचे, जिनके समीप पहुँचकर शत्रुघ्नद्वारा सुरक्षित मेरा अश्व बाँध लिया गया ? ॥ ८½ ॥

मामनादृत्य भरतं सुग्रीवं च विभीषणम् ॥ ९ ॥
अङ्गदं वालितनयं हनूमन्तं महाबलम् ।
अन्यान् मम सुहृद्बन्धूंस्तृणीकृत्यापहारकौ ॥ १० ॥
वाजिनं करसम्प्राप्तं पश्यतां बालचेष्टितम् ।

इनकी बालचेष्टा तो देखो, जो इन्होंने मेरा अनादर करके तथा भरत, सुग्रीव, विभीषण, वालिकुमार अंगद, महाबली हनुमान् एवं मेरे अन्य सुहृद्-बन्धुओंको तृणके समान समझकर हाथमें आये हुए घोड़ेका अपहरण कर लिया ॥

भरत प्रेरय जनांस्तं देशं यत्र मे हयः ॥ ११ ॥
लक्ष्मणं प्रति संग्रामे यथाऽऽनयति वाजिनम् ।
वचनं कुरुते क्रुद्धः सौमित्रिर्मामकं सदा ॥ १२ ॥

भरत ! अब जहाँ मेरा घोड़ा पकड़ लिया गया है, उस देशमें लक्ष्मणके पास कुछ दूतोंको भेजो, जिससे वे संग्रामभूमिमें जाकर यह पता लगावें कि क्या लक्ष्मण घोड़ेको ले आ रहे हैं ? क्योंकि लक्ष्मण कुपित होकर सदाकी भाँति मेरी आज्ञाका पालन करता रहा है ॥ ११-१२ ॥

जैमिनिरुवाच

भरतेन समाहूताः पञ्च दूता महाबलाः ।
रामपार्श्वे क्षणादेत्य तानुवाच स्वयं प्रभुः ॥ १३ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब भरतने पाँच महाबली दूतोंको बुलाया । वे क्षणभरमें श्रीरामके पास आकर खड़े हो गये । तब स्वयं भगवान् राम उनसे कहने लगे ॥ १३ ॥

राम उवाच

यात लक्ष्मणमानेतुं ब्रूत मद्वाक्यमेव तम् ।
जीवितेन युतौ युद्धे मोहनास्त्रेण मोहितौ ॥ १४ ॥
रक्षणीयौ त्वया बालौ सागसावपि लक्ष्मण ।
त्वं वीरोऽसि वृतश्चासि शूरैः सर्वास्त्रकोविदैः ॥ १५ ॥
रथस्थोऽसि समर्थोऽसि विरथौ तौ निराश्रयौ ।
अत्रानय शिशू वेगान्मा पातय रणेऽबलौ ॥ १६ ॥

श्रीराम बोले—दूतो ! तुमलोग लक्ष्मणको बुलानेके

लिये जाओ और वहाँ उनसे मेरी यह बात कहो—'लक्ष्मण ! यद्यपि उन बालकोंने अपराध किया है, तथापि तुम्हें उनकी रक्षा करनी चाहिये; अतः युद्धस्थलमें तुम उन्हें सम्मोहनास्त्र-द्वारा मोहित करके जीते-जी पकड़ लो। तुम स्वयं तो शूरवीर हो ही, साथ ही तुम्हारे साथ बहुत-से ऐसे शूरवीर भी हैं, जो सम्पूर्ण अस्त्रोंके जानकार हैं। तुम सामर्थ्यशाली होनेके साथ ही रथपर सवार हो तथा वे दोनों आश्रयरहित एवं रथहीन हैं; अतः तुम उन दोनों निर्बल शिशुओंको शीघ्र ही पकड़ लाओ, उन्हें युद्धमें मारना मत ॥ १४–१६ ॥

परबाले दयायुक्तं चित्तं कुर्वन्ति ये जनाः ।
ते पुत्रपौत्रैः सहिता जायन्ते भुवि साधवः ॥ १७ ॥

'जिन सज्जन पुरुषोंका चित्त पराये बालकको देखकर करुणा-पूर्ण हो जाता है, उन्हें इस पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रोंकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

मया न पुत्रवदनं सीतावदनसंनिभम् ।
वीक्षितं भुवि जातेन ततस्तौ मोचयाम्यहम् ॥ १८ ॥

'इस पृथ्वीपर उत्पन्न होकर मैंने अभीतक सीताके समान मुखवाले पुत्रके मुखको नहीं देखा है, इसीलिये मैं उन दोनों बालकोंको जीवित छोड़ देनेके लिये आज्ञा देता हूँ ॥ १८ ॥

प्रष्टव्यौ कस्य पुत्रौ तौ किमर्थं वनचारिणौ ।
पुत्रयोर्जननी कुत्र तत् पृष्ट्वा तां समानय ॥ १९ ॥

'उनसे पूछना चाहिये कि तुम दोनों किसके पुत्र हो तथा किसलिये वनवासी हो गये हो ? उन पुत्रोंकी माता कहाँ है—यह पूछकर उसे भी लेते आना' ॥ १९ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं दिशति रामे तु दूतान् प्रति विशाम्पते ।
तावद् दूताः शरैर्भिन्नाः क्षतजौघप्रवाहिणः ॥ २० ॥
लक्ष्मणस्य महावीरा रामं शरणमाययुः ।
राम रामेति जल्पन्तः शंसन्तः सुमहद्भयम् ॥ २१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—प्रजानाथ जनमेजय ! श्रीराम इस प्रकार दूतोंको आदेश दे ही रहे थे, तबतक लक्ष्मणके महाबली दूत, जो बाणोंसे घायल हो शरीरसे रक्त बहा रहे थे, श्रीरामकी शरणमें आ पहुँचे । उस समय वे 'राम-राम' की रट लगा रहे थे और महान् भयकी सूचना दे रहे थे ॥

राम राम महाबाहो त्राह्यस्मान् महतो भयात् ।
बहुलेन बलेनापि वृतः शूरः स लक्ष्मणः ॥ २२ ॥
प्रापतत् काननं घोरं शत्रुघ्नो यत्र मूर्च्छितः ।
ससैनिकः क्षतो बाणैः कुशस्य परितिष्ठति ॥ २३ ॥
कुशसायकभिन्नाङ्गै रुधिरापीडवाहिभिः ।
वीरैर्न ज्ञायते किंचित् किंशुकैः पुष्पितैरिव ॥ २४ ॥

(वे बोले—) 'राम ! महाबाहु राम ! इस महान् भयसे हमलोगोंकी रक्षा कीजिये । महाराज ! जब विशाल सेना-से घिरे हुए शूरवीर लक्ष्मण उस भयंकर वनमें पहुँचे, उस समय वहाँ कुशके बाणोंसे घायल होकर सैनिकोंसहित शत्रुघ्न मूर्च्छित हुए पड़े थे । वीरोंके शरीर कुशके सायकोंसे छिन्न-भिन्न हो गये थे, वे अपने शरीरसे रक्तकी धारा बहा रहे थे तथा खिले हुए पलाशवृक्षकी भाँति जान पड़ते थे । उन मूर्च्छित हुए वीरोंको कुछ भी ज्ञात नहीं हो रहा था ॥ २२–२४ ॥

वज्रपातसहा वीरा नानाशस्त्रैः प्रपीडिताः ।
न जानन्ति व्यथां ये वै ते कुशेन विमूर्च्छिताः ॥ २५ ॥

'जो वीर वज्रपातको भी सहन करनेकी शक्ति रखते थे तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अत्यन्त पीडित होनेपर भी जिन्हें व्यथाका अनुभव नहीं होता था, उन्हें भी कुशने मूर्च्छित कर दिया था ॥ २५ ॥

लवेनैकेन शिशुना कृता सा वाहिनी घना ।
विमुखा भूभृतं प्राप्ता दृष्ट्वा बालस्य चेष्टितम् ॥ २६ ॥
लक्ष्मणस्य बलाध्यक्षः पतितो भुवि राघव ।
कालजिद् बहुभिः सार्द्धं कुशबाणैः प्रपीडितः ॥ २७ ॥

'उन दोनोंमेंसे अकेले बालक लवने उस घनी सेनाको भी मारकर विमुख कर दिया । वह सेना पर्वतपर भाग गयी । राघव ! तदनन्तर उस बालककी ऐसी चेष्टा देखकर लक्ष्मणका सेनापति कालजित् बहुत-से योद्धाओंके साथ युद्धस्थलमें उतरा, किंतु कुशके बाणोंसे अत्यन्त घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २६–२७ ॥

लक्ष्मणेन कृतं युद्धं भ्रातरौ वीक्षितौ वने ।
स्वमनः कृपया युक्तं वैरं त्यक्त्वानुजस्य तत् ॥ २८ ॥

'इसके बाद जब लक्ष्मण युद्ध करने लगे, तब वनमें उन दोनों भाइयोंको देखकर उनका मन कृपापरवश हो गया । उस समय उन्हें अपने छोटे भाई शत्रुघ्नके वैरका भी ध्यान जाता रहा ॥ २८ ॥

ततः कुशं प्रत्युवाच सौमित्रिः स तवानुजः ।
गच्छ बालक मुक्तोऽसि कनिष्ठेन समं गृहम् ॥ २९ ॥

जनन्यै ब्रूहि मुक्तोऽस्मि सामयुक्तेन केनचित् ।

'तत्पश्चात् आपके अनुज लक्ष्मण कुशसे कहने लगे—'बालक ! मैंने तुझे क्षमा कर दिया है, अब तू अपने छोटे भाईके साथ घर लौट जा और अपनी मातासे कहना कि किसी शान्तस्वभाव वीरने मुझे क्षमा करके छोड़ दिया है' ॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा कुशो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ ३० ॥
त्वं गच्छ रामं मुक्तोऽसि दुःखितं त्वां न योधये ।

'तब लक्ष्मणकी बात सुनकर कुशने उन्हें उत्तर दिया—'लक्ष्मण ! मैंने तुम्हें छोड़ दिया । अब तुम श्रीरामके पास चले जाओ । तुम्हारा मन दुखी हो गया है, अतएव मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा ॥ ३०½ ॥

न क्षमाल्पाप्यहो रामे साम्प्रतं हि विलोक्यते ॥ ३१ ॥
यः सानुजं भवन्तं तु क्लेशयन् नागतः स्वयम् ।

'अहो ! इस समय श्रीराममें तो थोड़ी-सी भी क्षमा नहीं दीखती, जो उन्होंने स्वयं न आकर शत्रुघ्नसहित तुम्हें इस कष्टमें डाल दिया है ॥ ३१½ ॥

भीतोऽवमानसंसर्गकारकाद् राघवादसि ॥ ३२ ॥
कृपा धृता त्वन्निमित्तमक्षतो याहि लक्ष्मण ।
प्रहराशु शरौघैर्मां पौरुषं चेद् विभाति ते ॥ ३३ ॥

'लक्ष्मण ! यदि तुम इस बातसे डर रहे हो कि रघुनाथजी मेरा अपमान करेंगे तो तुम्हारे लिये मैंने अपने मनमें कृपा धारण कर ली । अब तुम अक्षत ही लौट जाओ । अन्यथा यदि तुम्हें अपनेमें कुछ पौरुषकी प्रतीति होती हो तो शीघ्र ही मुझपर बाणसमूहोंसे प्रहार करो' ॥ ३२-३३ ॥

लक्ष्मणस्तं जघानाथ हृदये सप्तभिः शरैः ।
ते शरास्तं तदा भित्त्वा बालं युद्धे तथाविधे ॥ ३४ ॥
पतिताः कानने तीक्ष्णा विभिदुः पादपानपि ।
ततः कुशस्य बाणौघैर्लक्ष्मणस्य कलेवरम् ॥ ३५ ॥
समाकीर्णं त्वग्विहीनं क्षणादेव रणे कृतम् ।
कर्तुं किं लक्ष्मणो वेत्ति नवीनं स्वं कलेवरम् ॥ ३६ ॥
पूर्वाभ्यासेन केनापि तस्माद् बालं प्रयोधितः ।
पश्चात् पपात धीरोऽसौ कुण्डली सायकैः क्षतः ॥३७॥

'तदनन्तर लक्ष्मणने कुशके हृदयपर सात बाणोंसे प्रहार किया । उस समय वे तीखे बाण उस बालकके हृदयको छेदकर वनमें जा गिरे और वहाँ उन्होंने वृक्षोंको भी छिन्न-भिन्न कर दिया । वैसे भयंकर युद्धके आरम्भ होनेपर कुशने रणभूमिमें लक्ष्मणके शरीरको अपने बाणसमूहोंसे आच्छादित करके क्षण-मात्रमें ही उसे त्वचाहीन कर दिया । परंतु क्या लक्ष्मण किसी पूर्वाभ्यासके कारण अपने शरीरको नवीन बना लेनेकी कोई विद्या जानते हैं ? जिससे वे उस बालकके साथ युद्ध करते ही रह गये । इसके बाद कुण्डलधारी तथा धैर्यशाली लक्ष्मण सायकोंसे क्षत-विक्षत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥

भग्नं बलं ते पतितं गतं राम दिशो दश ।
भ्रातरौ तौ महावीरौ क्षतौ शत्रुघ्नलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥

'राजाधिराज राम ! इस प्रकार जब आपके दोनों महाबली भाई शत्रुघ्न और लक्ष्मण घायल हो गये, तब आपकी सेनामें भगदड़ मच गयी । बहुत-से वीर मारे गये और शेष दसों दिशाओंमें भाग गये ॥

ताभ्यां विहीना हि वयं तुभ्यं शंसितुमागताः ।
त्यज दीक्षां रघुपते कुरु युद्धं वनं व्रज ॥ ३९ ॥
यावन्नायान्ति ते बाणाः कुशकार्मुकनिःसृताः ।
नान्यस्य गणना तस्य कुशस्य पुरतः प्रभो ॥ ४० ॥

'उन दोनों वीरोंसे विहीन होकर हमलोग आपको इसकी सूचना देनेके लिये भाग आये हैं । रघुपते ! जबतक कुशके धनुषसे छूटे हुए बाण इधर नहीं आ रहे हैं, उसके पहले ही आप दीक्षाको त्याग दीजिये, वनमें चलिये और युद्ध कीजिये । प्रभो ! उस कुशके आगे दूसरे वीरकी कोई गणना नहीं है' ॥

जैमिनिरुवाच

एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा तेषां स राघवः ।
मूर्च्छितो निपपातोर्व्यां भरतस्याग्रतस्तदा ॥ ४१ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब उन दूतोंकी वैसी बात सुनकर रघुनाथजी भरतके सामने ही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४१ ॥

गृहीतो भरतेनाथ सिक्तश्चैवाम्भसा रघुः ।
परिमृज्यास्य नेत्रे च समाश्वास्य पुनः पुनः ॥ ४२ ॥
चेतनासहितं वीक्ष्य भरतो वाक्यमब्रवीत् ।

तब भरत रघुनाथजीको उठाकर उनपर जलके छींटे देने लगे और उनके नेत्रोंको जलसे धोकर बारंबार उन्हें ढाढ़स बँधाने लगे । तत्पश्चात् श्रीरामको चेतनायुक्त देखकर भरत इस प्रकार बोले ॥ ४२½ ॥

भरत उवाच

मा विषादे मनः कार्षीर्लक्ष्मणं प्रति राघव ॥ ४३ ॥

शत्रुघ्नेन समं युद्धे तवार्थे विनिपातितम् ।
लक्ष्मणस्त्यक्तुकामोऽयं स्वदेहं दुःखितो भृशम् ॥४४॥
परित्यज्यागतो देवीं यदाप्रभृति कानने ।
सीतादुःखेन नो जीवन् पुनरायाति तेऽन्तिकम् ॥४५॥
शंसितुं स पुरा प्राप्तस्तवादेशो मया कृतः ।
तथापि न कृपा जाता जानक्यां न च लक्ष्मणे ॥ ४६ ॥

भरतने कहा—राघव ! आप लक्ष्मणके लिये अपने मनमें विषाद मत कीजिये । वह आपके कार्यके लिये ही युद्ध-में शत्रुघ्नके समान मार गिराया गया है । लक्ष्मण तो स्वयं ही अपने शरीरका परित्याग कर देना चाहता था; क्योंकि जबसे वह वनमें सीतादेवीको त्यागकर लौटा है, तबसे अत्यन्त दुखी रहा करता था । वह तो पहले ही सीताजीके दुःखसे दुखी होकर आपके समीप पुनः जीवित लौटना नहीं चाहता था, परंतु आपको यह समाचार देनेके लिये चला आया था कि मैंने आपके आदेशका पालन कर दिया । तथापि आपको जानकीजी तथा लक्ष्मणपर दया न आयी ॥ ४३–४६ ॥

संस्मृत्य समये मृत्युमकरोल्लक्ष्मणो हृदि ।
अथ रामनिमित्तं हि यज्ञकार्ये सबान्धवः ॥ ४७ ॥

अपने हृदयमें इन सब बातोंका स्मरण करके ही लक्ष्मण-ने इस यज्ञकार्यके अवसरपर श्रीरामके निमित्त भाई शत्रुघ्न-सहित मृत्युका वरण कर लिया है ॥ ४७ ॥

स्मृत्वा त्यागं हि सीताया युद्धे तत्याज जीवितम् ।
निरपराधां त्यक्त्वा यां वने सीतां समागतः ॥ ४८ ॥
तत्रत्यं किल्बिषं देहे धारयन् संस्थितः सदा ।
तस्याद्य कुशकोदण्डप्रचण्डशरगङ्गया ॥ ४९ ॥
क्षालितं किल्बिषं गात्राद् राम पूतोऽद्य लक्ष्मणः ।
भरतं मामपूतं हि न प्रेरयसि किंचन ॥ ५० ॥

लक्ष्मणने सीता-परित्यागका स्मरण करके ही युद्धमें अपना जीवन विसर्जित कर दिया है । वह जिस निरपराध सीताजीको वनमें त्यागकर चला आया था, वह सीता-त्यागजन्य पाप सदा उसके शरीरमें वर्तमान रहा । आज उसके शरीरसे वह पाप कुशके धनुषसे निकली हुई प्रखर बाणगङ्गासे धुल गया । भैया राम ! आज लक्ष्मण तो पवित्र हो गया; परंतु अब मुझ अपावन भरतको वहाँ जानेकी आज्ञा क्यों नहीं देते ? ॥

अद्य राघव यास्यामि तत् कर्तुं पावनं वपुः ।
विचारः सकलो जातः सीतात्यागे च ते वने ॥ ५१ ॥
अयोध्यायां स्थितो जीवन् न तथाद्य करोम्यहम् ।
कथं हीनोऽत्र तिष्ठामि सीताशत्रुघ्नलक्ष्मणैः ॥५२॥
एवं वदन्तं भरतं जगाद भरताग्रजः ।

राघव ! आज मैं अपने उस शरीरको पावन करनेके लिये वहाँ जाऊँगा । जिस समय आपने वनमें सीताके त्यागका विचार किया था, उसी समय मेरे मनमें भी (स्वशरीर-त्याग-का) पूर्ण विचार हो गया था, परंतु अयोध्यामें रहते हुए मैं वैसा न कर सका और अभीतक जीवित रहा । आज मैं अपने उस पूर्व-विचारको पूर्ण करूँगा । भला, अब मैं सीता, शत्रुघ्न और लक्ष्मणसे रहित होकर इस अयोध्यामें कैसे रह सकूँगा ? यों कहते हुए भरतसे भरताग्रज श्रीराम बोले ॥ ५१-५२½ ॥

श्रीराम उवाच

कोऽसौ भरत जानीहि स बालो व्रज काननम् ॥ ५३ ॥
तमानय कुशं जित्वा सानुजं मम संनिधौ ।
समुत्थापय वीरौ तौ मूर्च्छितौ मम बान्धवौ ॥ ५४ ॥

श्रीरामने कहा—भरत ! तुम उस वनमें जाओ और इसका पता लगाओ कि वह बालक कौन है । वहाँ जाकर रणभूमिमें मूर्च्छित पड़े हुए मेरे दोनों भाई वीरवर शत्रुघ्न और लक्ष्मणको उठाओ और अनुजसहित कुशको जीतकर उसे मेरे पास ले आओ ॥ ५३-५४ ॥

हनूमानपि यात्वेष जाम्बवान् वानरैः सह ।
तवानुवृत्तिं कुर्वाणः कुरु वाक्यं ममोदितम् ॥ ५५ ॥

ये हनुमान् और जाम्बवान् भी वानरोंके साथ तुम्हारा अनुवर्तन करते हुए तुम्हारे साथ जायँ । तुम मेरे कहे हुए वचनोंका पालन करो ॥ ५५ ॥

पितृवाक्यं मयाकारि व्रजता काननं प्रति ।
त्वया तु न कृतं तस्य जनकस्य वचो महत् ॥ ५६ ॥
नन्दिग्रामे प्रवसता जटावल्कलधारिणा ।
इदानीं तस्य पापस्य निष्कृतिं कुरु राघव ॥ ५७ ॥
मद्वाक्यकरणादेव पूतो भव महामते ।

मैंने वनमें जाकर भी पिताकी उस आज्ञाका पालन किया था; परंतु जटा-वल्कल धारण करके नन्दिग्राममें निवास करते हुए तुमने पिताके उस महत्त्वपूर्ण वचनको नहीं पूर्ण किया ! राघव ! इस समय तुम अपने उस पापका प्रायश्चित्त कर डालो । महामते ! मेरी आज्ञाका पालन करके ही तुम पवित्र हो लो ॥ ५६-५७½ ॥

भरतस्त्वब्रवीद् वाक्यं कथयामि रघूद्वह ॥ ५८ ॥
द्वौ श्रुतौ बालकौ वीरौ तव सैन्यनिपातकौ ।
न तौ भवान् विजानाति हनूमान् वेत्ति वा न वा ।५९।
अङ्गदो वा विजानाति नीतिज्ञः सचिवस्तव ।

तब भरत कहने लगे—"रघुनाथजी ! मैं आपसे कुछ निवेदन करता हूँ । आपकी सेनाका संहार करनेवाले जो दोनों वीर बालक सुने जाते हैं, उन्हें आप नहीं जानते । ये हनुमान् भी जानते हैं या नहीं—इसमें संदेह है । सम्भवतः अंगद जानते हों; क्योंकि ये आपके नीतिनिपुण मन्त्री हैं॥५८-५९½॥

अङ्गद उवाच

मन्येऽहं बालकौ तौ तु रामदुर्मन्त्ररूपिणौ ॥ ६० ॥
सीतां लोकापवादेन यज्जहौ रघुनन्दनः ।

तब अंगदने कहा—मैं तो ऐसा समझता हूँ कि रघुनाथजीने लोकापवादके कारण जो सीताजीका परित्याग कर दिया है, उसी दुर्मन्त्रके परिणामस्वरूप वे दोनों बालक प्रकट हुए हैं ॥ ६०½ ॥

जैमिनिरुवाच

एवं रामसमादिष्टो हनूमत्प्रमुखैर्वृतः ॥ ६१ ॥
निर्ययौ भरतः क्रोधाद् रथमारुह्य सत्वरः ।
निर्गतं बहुलं सैन्यं गगने भूतलेऽपि च ॥ ६२ ॥
राघवस्य पुराद् रम्यान्नरवानरसंकुलम् ।
भरतः काननं प्राप्य हनूमन्तमुवाच ह ॥ ६३ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इस प्रकार श्रीरामकी आज्ञा पाकर भरत हनुमान् आदि प्रमुख वानरोंको साथ लेकर क्रोधपूर्वक रथपर सवार हो तुरंत ही चल पड़े । उस समय उनके पीछे नर और वानरोंसे भरी-पूरी आकाश और पृथ्वीपर गमन करती हुई विशाल सेना रघुनाथजीके उस रमणीय नगर-से बाहर निकली । तत्पश्चात् भरत उस वनमें पहुँचकर हनुमान्‌से बोले ॥ ६१–६३ ॥

भरत उवाच

हनूमन् पश्य संग्रामे कुशबाणैर्निपातिताः ।
रामस्य वीरा बहवो विशिरस्का विबाहवः ॥ ६४ ॥

भरतने कहा—हनूमन् ! संग्रामभूमिमें कुशके बाणोंसे गिराये गये इन श्रीरामके वीर सैनिकोंकी ओर तो देखो । इनमें बहुतोंके सिर और भुजाएँ कट गयी हैं ॥ ६४ ॥

गजान् रथान् हयान् वीरान् करभान् गतमस्तकान् ।
धावमानान् पुरः पश्य गतस्वास्थ्यानितस्ततः ॥ ६५ ॥

उधर सामने देखो, बहुत-से हाथी, घोड़े, ऊँट और वीर सैनिक मस्तकहीन होकर पृथ्वीपर पड़े हैं, रथ टूट-फूटकर बिखर गये हैं एवं घायल प्राणी इधर-उधर दौड़ रहे हैं ॥

कुतस्तौ पतितौ वीरौ रणे शत्रुघ्नलक्ष्मणौ ।
शोणितेनात्र नीयन्ते बहुलेन महाबलाः ॥ ६६ ॥
भागीरथीं प्रति बलान्नीतौ किं मम बान्धवौ ।
क्वचित् कराः क्वचित् पादाः क्वचिद् दन्ता नृणामिह६७

न जाने वे दोनों वीर शत्रुघ्न और लक्ष्मण रणक्षेत्रमें कहाँ पड़े हैं ? यहाँ तो रुधिरकी प्रखर धारा महाबली वीरोंको बहाये लिये जा रही है । क्या मेरे दोनों भाई भी इसीके द्वारा बलात् गङ्गाजीमें डाल दिये गये ? यहाँ बहते हुए मनुष्योंके कहीं हाथ, कहीं पैर और कहीं दाँत दीख रहे हैं ॥ ६६-६७॥

दृश्यन्ते वाहनानां तु क्वचित् केशाः क्वचित् स्रजः ।
नदीमिमां समुल्लङ्घ्य व्रज पारं निरीक्षय ॥ ६८ ॥
यथा गतोऽसि लङ्कां त्वं तीर्त्वा जलनिधिं पुरा ।
तत्र तौ पश्य पतितौ बान्धवौ मामकौ भुवि ॥६९॥
विलोकनीयौ तौ बालौ त्वया कुशलवौ क्वचित् ।

कहीं वाहनोंके बाल और कहीं मालाएँ बहती हुई दृष्टि-गोचर हो रही हैं । अतः अब तुम जैसे पहले सागरको पार करके लंकामें पहुँच गये थे, उसी तरह इस रक्तकी नदीको लाँघकर उस पार जाओ और पता लगाओ । वहाँ पृथ्वीपर पड़े हुए मेरे उन दोनों भाइयोंकी खोज करो । साथ ही वे दोनों बालक कुश और लव भी यदि कहीं दीख जायँ तो उनपर भी दृष्टि रखना ॥ ६८-६९½ ॥

हनूमानुवाच

तदा तीर्णोऽस्मि भरत सागरं सीतया स्वयम् ॥ ७० ॥
सम्मुखा सा पुरा जाता विमुखाद्य विलोक्यते ।
शोणितौघां नदीं मन्ये दुस्तरां लक्ष्मणाग्रज ॥७१॥
तथापि तव वाक्येन वीक्षितुं यामि बान्धवौ ।

हनुमान्‌ने कहा—भरतजी ! उस समय मैंने स्वयं सीताजीकी कृपासे ही समुद्रको पार किया था; क्योंकि पहले वे मेरे सम्मुख (अनुकूल) थीं और आज विमुख (प्रतिकूल) दीख रही हैं । इसलिये लक्ष्मणजीके बड़े भैया ! मैं इस रुधिर-से भरी हुई नदीको पार करना कठिन ही मानता हूँ, तथापि

आपकी आज्ञासे मैं उन दोनों भाइयोंका पता लगानेके लिये जाऊँगा ॥ ७०-७१½ ॥

इत्युक्त्वा तां नदीं तीर्त्वा ददर्श पतितावुभौ ॥ ७२ ॥
शरनिर्भिन्नसर्वाङ्गौ रणे शत्रुघ्नलक्ष्मणौ ।
प्रार्थयन्ताविव धरां सीतात्यागेन दुःखिताम् ॥ ७३ ॥
मा कोपं व्रज नौ स्थानं देहि सीताद्रुहोरिति ।

यों कहकर हनुमान्‌जी उस नदीको पार करके उस पार जा पहुँचे और वहाँ उन्होंने रणभूमिमें पड़े हुए दोनों भाई शत्रुघ्न और लक्ष्मणको देखा । उनके सारे अङ्ग बाणोंसे छिन्न-भिन्न हो गये थे । वे दोनों मानो सीताके परित्यागसे दुखी हुई पृथ्वीसे प्रार्थना कर रहे थे कि 'वसुन्धरे ! तुम हमारे ऊपर कोप न करो और सीतासे द्रोह करनेवाले हम दोनोंको भी अपनेमें स्थान दो' ॥ ७२-७३½ ॥

हनूमांस्तौ गृहीत्वाथ बाहुभ्यां पुनरागतः ॥ ७४ ॥
भरतस्य समीपं हि मूर्च्छितौ तरसा नृप ।

राजन् ! तदनन्तर हनुमान् उन दोनों मूर्च्छित भाइयोंको अपनी भुजाओंमें दाबकर पुनः शीघ्र ही भरतके समीप लौट आये ॥ ७४½ ॥

ददर्श भरतो भिन्नौ कुशबाणैः समन्ततः ॥ ७५ ॥
रथे संस्थापयामास भ्रातरौ विस्मयान्वितः ।
रक्षणे चाङ्गदं दत्त्वा हनूमन्तमुवाच ह ॥ ७६ ॥

भरतने देखा कि ये दोनों कुशके बाणोंसे सर्वथा घायल हो गये हैं, तब उन्होंने आश्चर्यचकित होकर दोनों भाइयोंको एक रथमें लिटा दिया और अंगदको उनकी रक्षाके लिये नियुक्त करके हनुमान्‌से पूछा—॥ ७५-७६ ॥

क्व गतौ बालकौ वीरौ रामसैन्यनिपातकौ ।
हनूमन् पश्य कुत्रापि बालवेषधरौ सुरौ ॥ ७७ ॥
गतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ पातयित्वा महारणे ।

'हनूमन् ! श्रीरामकी सेनाका विनाश करनेवाले वे दोनों वीर बालक कहाँ चले गये ? कहीं पता तो लगाओ । मालूम होता है, वे दोनों बाल-वेषधारी कोई देवता हैं, जो इस महासमरमें लक्ष्मण और शत्रुघ्नको धराशायी करके चले गये' ॥ ७७½ ॥

हनूमानुवाच

मेघनादशरैर्नायं मूर्च्छितो लक्ष्मणस्तथा ॥ ७८ ॥
यथा कुशशरैर्व्याप्तो न जहाति हि कश्मलम् ।
मूर्च्छना मामुपैत्येषा वीक्ष्य लक्ष्मणमातुरम् ।
पश्यन्ति सैनिकाः सर्वे बालाभ्यां निहतं बलम् ॥७९॥

हनुमान्‌ने कहा—भरतजी ! ये लक्ष्मण मेघनादके बाणोंसे भी वैसा मूर्च्छित नहीं हुए थे, जैसा आज कुशके बाणोंसे व्याप्त हो गये हैं । अरे ! मूर्च्छा तो इन्हें छोड़ती ही नहीं है । लक्ष्मणजीको दुखी देखकर तो इस समय मुझे मूर्च्छा आ रही है और सारे सैनिक उन दोनों बालकोंद्वारा मारी गयी सेनाकी ओर देख रहे हैं ॥ ७८-७९ ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने हनूमद्वाक्यं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें हनुमान्‌का कथन नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

कुशलवोपाख्यान—कुश और लवका भरतके साथ युद्ध, भरतका मूर्च्छित होना, दूतोंके खबर देनेपर श्रीरामका युद्धके लिये आना, कुशद्वारा वानरोंसहित मूर्च्छित होना, लवका हनुमान् और जाम्बवान्‌को पकड़कर सीताके पास ले जाना, सीताद्वारा उनकी मुक्ति, वाल्मीकिजीका आगमन और कुश-लवद्वारा सारा वृत्तान्त सुनकर अमृतमय जलसे सींचकर श्रीराम आदिको उठाना, श्रीरामका अयोध्या लौटना, वाल्मीकि मुनिका पुत्रोंसहित सीताको श्रीरामके समीप ले जाना, अश्वमेधयज्ञकी समाप्ति

जैमिनिरुवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो धनुर्विस्फारयन् कुशः ।
खड्गचर्मधरो वीरो लवः संग्राममागमत ॥ १ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! इसी बीचमें कुश अपने धनुषकी टंकार करता हुआ आ पहुँचा और वीरवर लव ढाल-तलवार लिये हुए संग्रामभूमिमें आ धमका ॥ १ ॥

प्रकाशयित्वा पृथिवीं करैः सागरमेखलाम् ।
सूर्योऽन्तर्धानमापेदे ध्वान्तं च समपद्यत ॥ २ ॥

उधर सूर्यदेव भी सागरको मेखलारूपमें धारण करनेवाली पृथ्वीको अपनी किरणोंसे प्रकाश पहुँचाकर अन्तर्धान हो गये, तब चारों ओर अन्धकार छा गया ॥ २ ॥

आत्मनश्च परेषां च वीरो न ज्ञायते तदा ।
अन्योन्यं नामभिस्ते वै क्रोशन्ति रणकोविदाः ॥ ३ ॥

उस समय यह वीर अपना है या पराया—इसका ज्ञान जाता रहा। युद्धकुशल वीर परस्पर एक-दूसरेका नाम ले-लेकर पुकारने लगे ॥ ३ ॥

गजा मत्ताश्च धावन्ति चूर्णयन्तो रथान् बहून् ।
रथवेगेनाश्ववीराः पतन्ति हयपृष्ठतः ॥ ४ ॥
हयवेगेनाश्ववीराः पत्तयो भुवि शेरते ।
दोधूय खड्गं स लवः प्रविवेश महाचमूम् ॥ ५ ॥

मतवाले गजराज बहुसंख्यक रथोंको कुचलकर चूर-चूर करते हुए इधर-उधर दौड़ने लगे। रथके वेगपूर्वक ठोकर लगनेसे घुड़सवार घोड़ोंकी पीठसे गिरने लगे। घोड़ोंके वेगपूर्वक दौड़नेसे घुड़सवार तथा उनके धक्केसे पैदल सैनिक पृथ्वीपर लोटने लगे। इसी समय लवने अपनी तलवार लपलपाते हुए उस विशाल सेनामें प्रवेश किया ॥ ४-५ ॥

शिरस्याधाय चर्माशु खड्गेनाश्वपदोऽच्छिनत् ।
हस्तिहस्तान् विशालांश्च चिच्छेद स कुशानुजः ॥ ६ ॥

तब कुशके अनुज लवने ढालको सिरपर रखकर खड्गसे शीघ्र ही घोड़ोंके पैर और हाथियोंके विशाल शुण्डदण्डको काटना आरम्भ किया ॥ ६ ॥

दीर्घहस्तौ समालम्ब्य व्रजन्नुपरि हस्तिनम् ।
विदारयति कुम्भौ स काष्ठानीव कुठारकः ॥ ७ ॥

फिर वह अपने लंबे-लंबे हाथोंके सहारेसे हाथियोंके मस्तकपर पहुँचकर उनके कुम्भस्थलोंको उसी प्रकार विदीर्ण करने लगा, जैसे कुल्हाड़ा लकड़ीको चीर डालता है ॥ ७ ॥

मुक्ताफलानि जगृहे मुष्टिभिर्भुवि चाक्षिपत् ।
हस्तिदन्तेषु पतितैः खड्गैर्भृशभयानकाः ॥ ८ ॥
समुत्थिताश्चाग्निकणास्ते दहन्ति स्म सैनिकान् ।
तावत् क्रुद्धो महाबाहुः कुशो बाणान् मुमोच सः ॥ ९ ॥

वह उन फटे हुए कुम्भस्थलोंमेंसे मुट्ठी भर-भरकर गजमुक्ता लेकर पृथ्वीपर फेंकने लगा। हाथियोंके दाँतोंपर खड्गसे प्रहार किये जानेपर अत्यन्त भयावनी अग्निकी चिनगारियाँ प्रकट हो जाती थीं। वे सैनिकोंको भस्म करने लगीं। तबतक महाबाहु कुश भी कुपित होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥

शिरांसि चिच्छिदे वीरो बाहूनङ्गदभूषितान् ।
शिरांसि करिणां बाणैरनयद् दिवमोजसा ॥ १० ॥

उस वीरने शत्रुओंके सिर तथा बाजूबंदविभूषित भुजाओंको काटकर गिरा दिया। वह हाथियोंके मस्तकोंको बलपूर्वक बाणोंसे काटकर द्युलोक (आकाश) में पहुँचा देता था ॥ १० ॥

आकाशेऽद्यापि ते प्राप्ता एकीभावं व्यवस्थिताः ।
अतः परं हि नक्षत्रं न भूतं न भविष्यति ॥ ११ ॥

आकाशमें पहुँचकर वे सभी सिर (हाथियोंके हस्त या शुण्ड) आज भी एकीभावको प्राप्त होकर स्थित हैं। उस हस्त-समुदायसे बढ़कर दूसरा कोई नक्षत्र न तो हुआ है और न होगा ही ॥ ११ ॥

तस्मान्नक्षत्रतां प्राप्ताः खे हस्ता हस्तिनां तथा ।
वर्षन्त्यद्यापि भूपृष्ठे हस्तादानोदकं बहु ॥ १२ ॥

इसी कारण वे हाथियोंके हस्त (सूँड) आकाशमें पहुँचकर नक्षत्र-पदको प्राप्त हुए हैं और आज भी वे भूतलपर अपने मदरूपी बहुत-से जलकी वर्षा करते रहते हैं ॥ १२ ॥

सावित्रं तस्य पानीयं निदानं मौक्तिकस्य च ।
एवं हि करिशीर्षाणि छिन्नानि शतशो रणे ॥ १३ ॥
कुशेन तेन वीरेण तदद्भुतमिवाभवत् ।

उस हस्त नक्षत्रपर सूर्यके पहुँचनेपर बरसनेवाला जल गजमुक्ताकी उत्पत्तिका कारण होता है। इस प्रकार उस विख्यात वीर कुशने रणभूमिमें सैकड़ों हाथियोंके मस्तक उड़ा दिये। यह एक अद्भुत-सी बात हुई ॥ १३½ ॥

अथ कोदण्डटङ्कारबधिरीकृतदिग्गजः ॥ १४ ॥
ददर्श भरतः किं तौ कार्तिकेयगणेश्वरौ ।
संहरन्तौ निजं सैन्यं वनं वायुविभावसू ॥ १५ ॥
मुमोच निशितान् बाणांस्तोयधारा इवाम्बुदः ।

तदनन्तर अपने धनुषकी टंकारसे दिग्गजोंको बधिर बना देनेवाले भरतने उन्हें देखा और मन-ही-मन सोचा—क्या वे दोनों कार्तिकेय और गणेश हैं ? जो मेरी सेनाका उसी प्रकार संहार कर रहे हैं, जैसे पवन और अग्नि एक साथ होकर वनको भस्म कर रहे हों। फिर तो वे तीखे बाण छोड़ने लगे, मानो बादल जलकी धारा गिरा रहे हों ॥ १४-१५½ ॥

जैमिनिरुवाच

बालकौ कार्मुकयुतौ घनश्यामौ च संगतौ ॥ १६ ॥
काकपक्षधरौ वीक्ष्य हनूमानिदमब्रवीत् ।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर जिनके हाथोंमें धनुष सुशोभित था, जिनकी अङ्ग-कान्ति काले बादलके सदृश श्याम थी, ऐसे काकपक्षधारी उन दोनों बालकोंको एक साथ देखकर हनुमान्‌जी इस प्रकार बोले ॥ १६½ ॥

हनूमानुवाच

एतौ रामाकृती बालौ बलं रामस्य वीक्षकौ ॥ १७ ॥
सज्जास्तिष्ठन्तु सर्वत्र भरताद्या महाबलाः ।

हनुमान्‌जी बोले—श्रीरामकी-सी आकृतिवाले ये दोनों बालक श्रीरामकी सेनाकी ओर (क्रूर दृष्टिसे) देख रहे हैं, अतः अब भरत आदि महाबली वीर सर्वत्र सावधान होकर खड़े हो जायँ ॥ १७½ ॥

एवं ब्रुवति वीरे तु तदा पवननन्दने ॥ १८ ॥
तावत् कुशः प्रत्युवाच लवं रणगतं तदा ।
पश्य सैन्यं लव प्राप्तं तुरङ्गं नेतुमिच्छति ॥ १९ ॥
व्रजाम्येतद् बलं भ्रातस्तुरङ्गं त्वं हि पालय ।
ततो रामानुजं वीक्ष्य कुशो वचनमब्रवीत् ॥ २० ॥

वीरवर पवननन्दन हनुमान् ऐसा कह ही रहे थे कि कुशने रणभूमिमें खड़े हुए लवसे कहा—'लव ! देख, सेना तो आ पहुँची है और यह उस घोड़ेको ले जाना चाहती है; इसलिये भाई ! मैं उस सेनाकी ओर जा रहा हूँ और तू इस घोड़ेकी रक्षा करना ।' तत्पश्चात् भरतको देखकर कुश यों कहने लगा ॥ १८–२० ॥

कुश उवाच

शत्रुघ्नो लक्ष्मणश्चोभौ शयाते निहतं बलम् ।
किं नाम मे न जानासि शत्रुं मां कुशमागतम् ॥ २१ ॥

कुश बोला—भरत ! शत्रुघ्न और लक्ष्मण—ये दोनों रणभूमिमें पड़े सो रहे हैं और सारी सेनाका संहार हो गया; फिर भी क्या तुम मेरा नाम नहीं जानते ? मैं तुम्हारा शत्रु कुश हूँ और तुम्हारे सामने खड़ा हूँ ॥ २१ ॥

भरत उवाच

त्वां नयिष्याम्यहं युद्धात् पराजित्य निजां पुरीम् ।
सानुजं त्वरितं बालं घोटं मुञ्च व्रजाधुना ॥२२॥

तब भरतने कहा—कुश ! मैं तुझ बालकको तेरे छोटे भाईसहित परास्त करके इस युद्धस्थलसे अपनी नगरीको ले जाऊँगा, अन्यथा तू शीघ्र ही घोड़ेको छोड़ दे और अब अपने घरको लौट जा ॥ २२ ॥

जननीं ते तापसीं मे करुणः वीक्ष्य जायते ।
जनन्यै ब्रूहि मुक्तोऽस्मि सबन्धुर्भरतेन च ॥ २३ ॥
क्षमितं स्वबलस्याद्य पातनं यत् त्वया कृतम् ।

तेरी तपस्विनी माताकी ओर ध्यान करके मेरे हृदयमें करुणा उत्पन्न हो रही है । तू अपनी मातासे जाकर कह कि भरतने भाईसहित मुझे क्षमा कर दिया है । तूने जो मेरी सेनाको मार गिराया है, तेरे उस अपराधको भी मैंने आज क्षमा कर दिया ॥ २३½ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कुशो बाणैरथार्दयत् ॥२४॥
भरतं सप्तभिर्वीरं वानरान् पञ्चसप्तभिः ।
हनूमन्तं शतेनायं ताडयामास संगरे ॥ २५ ॥

भरतकी वह बात सुनकर कुश उन्हें बाणोंसे पीडित करने लगा । उसने संग्रामभूमिमें वीरवर भरतको सात, वानरोंको बारह और हनुमान्‌को सौ बाणोंसे पीट दिया ॥ २४-२५ ॥

बाणानां वालिपुत्रं च सहस्रेण हसन्निव ।
नीलं पञ्चशतैर्विद्ध्वा सप्तत्या च नलं रणे ॥ २६ ॥
जाम्बवन्तं त्रिसाहस्रैर्बाणैर्विव्याध रोषितः ।
यस्य यस्य शरो लग्नो नितरां हृदये बलात् ॥ २७ ॥
मूर्च्छान्वितः स पतितः सीतापुत्रेण ताडितः ।

पुनः उस युद्धमें कुपित होकर कुशने मुसकराते हुए-से बालिकुमार अंगदको एक हजार, नीलको पाँच सौ और नलको सत्तर बाणोंसे बींधकर जाम्बवान्‌को तीन हजार बाणोंसे घायल कर दिया । अत्यन्त बलपूर्वक छोड़ा हुआ उसका बाण जिस-जिसके हृदयमें लगा, वही-वही सीतानन्दन कुशसे ताडित हो मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २६-२७½ ॥

बाणैः षड्भिश्च राजेन्द्र लवेनातिबलीयसा ॥ २८ ॥
भरतस्य धनुश्छिन्नं रथश्च शकलीकृतः ।
कुशकोदण्डनिर्मुक्तैर्मुमोह भरतः शरैः ॥ २९ ॥

राजेन्द्र जनमेजय ! तत्पश्चात् महाबली लवने छः बाणोंसे भरतके धनुषको काटकर उनके रथके भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये तथा कुशके धनुषसे छूटे हुए बाणोंकी चोटसे भरत भी मूर्च्छित हो गये ॥ २८-२९ ॥

गिरिमुत्पाट्य हनुमान् भरतं वीक्ष्य मूर्च्छितम् ।
चिक्षेप सीतासुतयोर्मूर्ध्नि योजनमायतम् ॥ ३० ॥

तब भरतको मूर्च्छित हुआ देखकर हनुमान्‌ने एक योजन विस्तारवाले एक पर्वतखण्डको उखाड़कर उसीसे सीताके दोनों कुमारोंके मस्तकपर प्रहार किया ॥ ३० ॥

तं पर्वतं दीर्घनेत्रौ बाणैश्चक्रतुरम्बरे ।
त्रसरेणुनिभं रुद्रगात्रभूतिसुखप्रदम् ॥ ३१ ॥

परंतु विशाल नेत्रोंवाले उन दोनों भाइयोंने उस पर्वतको आकाशमें ही अपने बाणोंसे काटकर त्रसरेणुके समान चूर-चूर कर दिया, जिससे वह शंकरजीके शरीरको सुख देनेवाली विभूति बन गया ॥ ३१ ॥

पञ्चभिस्तं हरिसुतं प्रभिन्नमपि मूर्च्छितम् ।
शरैः कनकचित्रैश्च कुशश्चक्रे स्वपौरुषात् ॥ ३२ ॥

तत्पश्चात् कुशने अपने पुरुषार्थसे स्वर्णभूषित पाँच बाण मारकर वानर-पुत्र हनुमान्‌को भी घायल एवं मूर्च्छित कर दिया ॥ ३२ ॥

ततो भग्नं बलं भूयो रामाय पतितं जनः ।
कथयामास राजेन्द्र श्रुत्वा रामो विनिर्ययौ ॥ ३३ ॥
ससुग्रीवो महाबाहुर्भ्रातृदुःखेन दुःखितः ।
विभीषणयुतः श्रीमान् विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ३४ ॥
वनं प्राप्य रथारूढस्तौ ददर्श बलं च तत् ।
हतप्रहतविध्वस्तं रामेति परिभाषि च ॥ ३५ ॥

फिर तो सारी सेनामें भगदड़ मच गयी। तब पुनः दूतने श्रीरामके पास जाकर सेनाके संहारकी बात कह सुनायी। राजेन्द्र ! यह समाचार सुनकर शोभाशाली महाबाहु रामके नेत्र आश्चर्यसे चकित हो उठे और वे भाइयोंके दुःखसे दुखी होकर सुग्रीव और विभीषणके साथ रथपर चढ़कर चल पड़े। उस वनमें पहुँचकर वहाँ उन्होंने उन दोनों बालकोंको तथा अपनी उस सेनाको देखा, जिसके बहुत-से वीर मारे गये थे, बहुत-से घायल थे और बहुत-से नष्ट-भ्रष्ट होकर राम-रामकी पुकार मचा रहे थे ॥ ३३–३५ ॥

जैमिनिरुवाच

पप्रच्छ रामस्तौ बालौ स्वाकृती धन्विनां वरौ ।
कुतोऽधीतो धनुर्वेदो भवद्भ्यां यद्धतं बलम् ॥ ३६ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! तब भगवान् राम धनुर्धर वीरोंमें श्रेष्ठ तथा अपनी-सी ही आकृतिवाले उन दोनों बालकोंसे पूछने लगे—'बालको ! तुम दोनोंको धनुर्वेदकी शिक्षा किससे मिली है, जिसके प्रभावसे तुमने मेरी सेनाका संहार कर डाला है ? ॥ ३६ ॥

केनोपनीतौ विधिवत् किंस्विद् वेदे कृतश्रमौ ।
किंस्वित् कलासु कुशलौ धर्मश्रवणतत्परौ ॥ ३७ ॥

'किसने विधिपूर्वक तुम्हारा उपनयन-संस्कार किया है ? और किस वेदमें तुमलोगोंने परिश्रम किया है ? तथा किन-किन कलाओंमें निपुणता प्राप्त की है ? क्या तुमलोग धर्म-चर्चा सुननेमें तत्पर रहते हो ? ॥ ३७ ॥

कच्चिन्न परदारेषु विरुद्धा दृष्टिरीर्यते ।
कच्चित् तेषु च विप्रेषु प्रतिज्ञायाश्च पालनम् ॥ ३८ ॥

'तुमलोग परायी स्त्रियोंपर कुदृष्टि तो नहीं डालते ? ब्राह्मणोंसे प्रतिज्ञा करके उसका पालन तो करते हो न ? ॥

कस्तातः का च जननी कुत्र वासो निवेद्यताम् ।
तद्भाषितमुपश्रुत्य कुशो वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

'तुम्हारे पिताका क्या नाम है ? तुम्हारी माता कौन है ? तुम्हारा निवासस्थान कहाँ है ? यह सब बातें मुझे बताओ।' तब श्रीरामका कथन सुनकर कुशने उत्तर दिया ॥ ३९ ॥

कुश उवाच

किमस्मदीयकथया वंशजोद्भवया नृप ।
क्षात्रं पौरुषमुत्सृज्य कथ्यते त्वादृशैर्जनैः ॥ ४० ॥

कुशने कहा—नरेश्वर ! हमारे वंशसम्बन्धी कथासे तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? वंशपरम्पराका कथन तो तुम्हारे-जैसे लोग ही क्षत्रियोचित पुरुषार्थका परित्याग करके किया करते हैं॥

शीघ्रं युध्यस्व राजेन्द्र विलम्बः क्रियते कथम् ।
न तुरङ्गो ह्यस्मदीय उच्यतां वाथ युध्यताम् ॥ ४१ ॥

राजेन्द्र ! अब शीघ्र युद्ध करो। विलम्ब क्यों कर रहे हो ? (तुम्हारे लिये दो ही उपाय है) या तो कह दो कि घोड़ा हमारा नहीं रहा अथवा युद्ध करो ॥ ४१ ॥

इति वाक्यं तयोः श्रुत्वा रामोऽवोचद् विशाम्पते ।
न करिष्याम्यहं युद्धं भवान् कथयतां कुलम् ॥ ४२ ॥

प्रजानाथ जनमेजय ! उन दोनों बालकोंकी बात सुनकर श्रीरामने कहा—'लो, मैं युद्ध नहीं करूँगा; अब तुम अपने कुलका वर्णन करो' ॥ ४२ ॥

कुश उवाच

केवलं सुषुवे सीता क्षमाशीलौ च नौ वने।
आवयोः कृतवान् सर्वं जातकर्मादिकं मुनिः ॥ ४३ ॥
उपनिन्ये च वाल्मीकिर्वेदं सम्यगपाठयत्।
तथा रामस्य चरितं सन्मनोनिर्वृतिप्रदम् ॥ ४४ ॥

तब कुश कहने लगा—राम ! हम दोनों क्षमाशील भाइयोंको केवल सीताने वनमें जन्म दिया है और वाल्मीकि मुनिने हम दोनोंके जातकर्म आदि सभी संस्कार सम्पन्न किये हैं तथा उपनयन-संस्कार करके वेद एवं सत्पुरुषोंके मनको आनन्द प्रदान करनेवाले श्रीरामके चरित्रकी शिक्षा भी सम्यक् प्रकारसे उन्होंने ही दी है ॥ ४३-४४ ॥

तत्तदभ्यासयोगेन दृष्टिर्विमलतां व्रजेत्।
बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वास्थ्यं प्रतापश्चापि वर्धते ॥४५॥

उस वेद और रामचरितका अभ्यास करनेसे दृष्टि निर्मल हो जाती है, बुद्धि और मन स्वस्थ रहते हैं और प्रतापकी वृद्धि होती है ॥ ४५ ॥

तस्माद्धतं बलं सर्वं योधानां तव पश्यताम्।
ममता नास्ति ते राम पुत्रदारधनेषु च ॥ ४६ ॥

उसीके प्रभावसे मैंने तुम्हारे योद्धाओंके सामने सारी सेनाका संहार किया है। राम! तुममें तो पुत्र, स्त्री और धनके विषयमें ममता ही नहीं है ॥ ४६ ॥

तस्माद्धतस्य सैन्यस्य गणना ते न विद्यते।
न शक्तिर्विद्यते राम सा त्यक्ता किं त्वया वने ॥ ४७ ॥
शक्तिहीनो नरः कस्तु युध्येत निशितैः शरैः।

इसी कारण तुम्हारी मारी गयी सेनाकी कोई गणना ही नहीं है (कि वह कितनी संख्यामें मारी गयी)। राम ! क्या अब तुममें शक्ति नहीं है ? क्या तुमने उसे वनमें ही छोड़ दिया था ? तब भला, कौन शक्तिहीन पुरुष पैने बाणोंसे युद्ध कर सकता है ? ॥ ४७½ ॥

जैमिनिरुवाच

रामोऽमन्यत पुत्रौ तौ सीतातनयकीर्तनात्।
धिगस्तु खलु नो युद्धमित्युक्त्वा धनुरुज्झहौ ॥ ४८ ॥
पपात रथनीडेऽथ मूर्च्छितो जनमेजय।

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय ! 'हम दोनों सीताके पुत्र हैं' कुशके इस कथनसे ही श्रीरामने समझ लिया कि ये दोनों मेरे ही पुत्र हैं। तब 'हमलोगोंके इस युद्धको धिक्कार है !' यों कहकर उन्होंने अपना धनुष फेंक दिया और फिर वे रथकी बैठकमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ ४८½ ॥

मूर्च्छां विहाय धर्मात्मा धीरः सत्यपराक्रमः ॥ ४९ ॥
सुग्रीवं परिपप्रच्छ रामः परपुरंजयः।
एतौ कस्यात्मजौ वीरौ जानीहि कपिसत्तम ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् मूर्च्छा दूर होनेपर शत्रुओंकी नगरीपर विजय पानेवाले सत्यपराक्रमी धीरवीर धर्मात्मा श्रीरामने सुग्रीवसे पूछा—'कपिश्रेष्ठ ! जरा इसका पता तो लगाओ कि ये दोनों वीर बालक किसके पुत्र हैं ?' ॥ ४९-५० ॥

सुग्रीव उवाच

पुराणपुरुषाज्जातावेतौ मन्येऽत्र राघव।
प्रतिबिम्बं तावकं हि वनमध्ये विलोक्यते ॥ ५१ ॥

तब सुग्रीवने कहा—राघव ! इस विषयमें तो मैं ऐसा समझता हूँ कि वे दोनों बालक आप पुराणपुरुषसे ही उत्पन्न हुए हैं; क्योंकि इस वनके बीच उनमें आपका ही प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर हो रहा है ॥ ५१ ॥

नापरं संगरे मन्ये जययुक्तं विना प्रभुम्।
तवाग्रे यामि बालौ हि युधि योधयितुं नृप ॥ ५२ ॥

नरेश्वर ! यद्यपि मैं यह समझ रहा हूँ कि संग्रामभूमिमें आपके अतिरिक्त दूसरा कोई विजयी नहीं हो सकता, तथापि मैं आपके सामने ही इन दोनों बालकोंसे लड़नेके लिये युद्ध-स्थलमें जाता हूँ ॥ ५२ ॥

गृहीत्वा शाखिनं राजन् मुमोच पुरतस्तयोः।
तौ वृक्षं तिलशः कृत्वा चक्रतुर्मूर्च्छितं हरिम् ॥ ५३ ॥
शरैः सुनिशितैस्तावन्नीलोऽयुध्यत वानरः।
नीलं बाणेन विव्याध कुशः कोपसमन्वितः ॥ ५४ ॥

राजन् ! (रणभूमिमें पहुँचकर) सुग्रीवने एक विशाल वृक्ष उखाड़कर उन दोनों बालकोंपर सामनेसे प्रहार किया। तब उन दोनोंने अत्यन्त तीखे बाणोंकी मारसे उस वृक्षके तिलके समान खण्ड-खण्ड करके सुग्रीवको भी मूर्च्छित कर दिया। तबतक नीलनामक वानर युद्ध करने लगा। तब कुशने कुपित होकर नीलको एक बाणसे घायल कर दिया ॥ ५३-५४ ॥

बभूवुर्बहवो नीला रुधिरात् तस्य चापरे।
तैश्च व्याप्तं रणं सर्वं तत्प्रमाणैर्महाबलैः ॥ ५५ ॥

तत्पश्चात् नीलके शरीरसे बहते हुए रक्तसे दूसरे बहुत-से

नील प्रकट हो गये। फिर तो नीलके समान ही आकार-प्रकार-वाले उन महाबली नीलोंसे सारा रणक्षेत्र व्याप्त हो गया ॥५५॥

तावत् कुशेन वीरेण बुद्ध्या सम्यग् विचारितम्।
जलौकास्त्रेण ते सर्वे विद्धाः पेतुर्धरातले ॥ ५६ ॥
स चापि पतितो नीलः परे भग्नाश्च सैनिकाः।
एक एव स्थितो रामो नाभवन् सैनिकाश्च ते ॥ ५७ ॥

तब वीरवर कुशने अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके जलौकास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो वे सभी नील उस अस्त्रसे घायल होकर भूतलपर गिर पड़े और वह वास्तविक नील भी धराशायी हो गया। तब दूसरे सैनिक भाग खड़े हुए। उस समय वहाँ उन सैनिकोंमेंसे कोई भी ठहर नहीं सका; अकेले श्रीराम ही खड़े रह गये ॥ ५६-५७ ॥

रामो मुमोच नाराचांस्तीक्ष्णान् कालानलप्रभान्।
मार्गणा निष्फलाः पेतुः कृपणस्येव मन्दिरे ॥ ५८ ॥
मनोरथा निर्धनस्य शरन्मेघा इवाम्बरे।

तदनन्तर श्रीराम कालाग्निके समान भयंकर एवं प्रकाश-मान तीखे नाराचोंकी वर्षा करने लगे; परंतु वे बाण जैसे कंजूसके घरपर याचना करनेवाले गरीबके मनोरथ व्यर्थ जाते हैं तथा आकाशमें छाये हुए शरत्कालके बादल (जलहीन होनेके कारण) निरर्थक होते हैं, उसी तरह निष्फल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५८½ ॥

यं यं बाणं मुमोचासौ राघवः कुपितो मृधे ॥ ५९ ॥
तं तं द्विधा चक्रतुस्तौ स चतुर्धाभवच्छरः।
एवं तदाभवद् युद्धं लोकविस्मयकारकम् ॥ ६० ॥

श्रीराम रणक्षेत्रमें क्रुद्ध होकर जिस-जिस बाणको छोड़ते थे, उस-उसको वे दोनों काटकर दो टुकड़े कर देते थे। इस प्रकार वह एक ही बाण चार भागोंमें बँट जाता था। उस समय संसारको विस्मित कर देनेवाला ऐसा ही युद्ध हुआ था॥

दृष्ट्वा तुल्यं बलं सम्यग् बालयो रघुनन्दनः।
सीतावदनवद् वक्त्रौ दृष्ट्वा बाणैश्च ताडितः ॥ ६१ ॥
पपात रथनीडेऽथ मूर्च्छितो जनमेजय।

जनमेजय! बाणोंसे अत्यन्त घायल हुए रघुनाथजीको जब यह निश्चय हो गया कि इन दोनों बालकोंमें एक-सा बल है, तब वे सीताके मुखके समान शोभाशाली उनके मुखकी ओर देखते हुए मूर्च्छित होकर रथकी बैठकमें गिर पड़े ॥

ततः कुशलवौ ज्ञात्वा मूर्च्छितं जानकीपतिम् ॥ ६२ ॥
समुत्तीर्य रथात् तस्माज्जगृहातेऽस्य कुण्डले।
केयूरं कण्ठहारं च लक्ष्मणस्यापि मण्डनम् ॥ ६३ ॥

तदनन्तर जानकीपति श्रीरामको मूर्च्छित जानकर कुश और लवने उन्हें उस रथसे उतारकर उनके दोनों कुण्डल, बाजूबंद और कण्ठहार उतार लिये तथा लक्ष्मणके भी आभूषण ले लिये ॥ ६२-६३ ॥

सर्वेषामपि वीराणां पतितानां रणाङ्गणे।
एतस्मिन्नन्तरे राजँल्लवः कुशमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥

इसी प्रकार उन्होंने रणाङ्गणमें पड़े हुए सभी वीरोंके आभूषण हस्तगत कर लिये। राजन्! इसी बीचमें लवने कुशसे कहा—॥

भ्रातः कुश ग्रहीष्यामि हनूमन्तं महाबलम्।
सीता वीक्ष्य कपिं हृष्टा भविष्यति न संशयः ॥ ६५ ॥

'भैया कुश! मैं इस महाबली हनुमान्‌को पकड़कर ले चलूँगा। इस बंदरको देखकर अवश्य ही माता सीता प्रसन्न होंगी ॥ ६५ ॥

रामस्य च रथं रम्यमध्यारोह सुदुर्जयम्।
लक्ष्मणस्य रथं रम्यमधिरुह्य व्रजाम्यहम् ॥ ६६ ॥
जाम्बवत्प्रमुखान् वीरान् स्वरथे परिपातय।

'आप श्रीरामके इस कठिनतासे जीते जानेवाले एवं रमणीय रथपर सवार होइये और मैं लक्ष्मणके सुन्दर रथपर चढ़कर चलता हूँ। आप इन जाम्बवान् आदि प्रधान-प्रधान वीरोंको अपने रथमें डाल लीजिये' ॥ ६६½ ॥

जैमिनिरुवाच

हनूमज्जाम्बवन्तौ च मूर्च्छाविरहितौ भुवि ॥ ६७ ॥
वानरावूचतुस्तथ्यं मीलयावोऽत्र लोचने ॥ ६८ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—जनमेजय! उस समय रणभूमिमें हनुमान् और जाम्बवान्‌की मूर्च्छा विगत हो गयी थी। तब वे दोनों वानर-वीर परस्पर कहने लगे—'ठीक ही तो है, अब हमलोग यहाँ अपने नेत्र मूँद लें' ॥ ६७-६८ ॥

हनूमानुवाच

पश्य रामादयो वीरा मूर्च्छिता बालसायकैः।
जाम्बवन् मां च कुरुते मूर्च्छितं रामसम्भवः ॥ ६९ ॥
किं करिष्यामि यदि मां स नेष्यति बलात् कुशः।
सीतासमीपं मरणं भविष्यति न संशयः ॥ ७० ॥

उस समय हनुमान् कहने लगे—जाम्बवन्!

देखो न, इन बालकोंके सायकोंकी चोटसे श्रीराम आदि वीर मूर्च्छित हुए पड़े हैं। श्रीरामसे उत्पन्न हुए इस शिशुने मुझे भी बेहोश कर दिया था; परंतु अब क्या करूँ? यदि कहीं वह कुश मुझे बलपूर्वक पकड़कर सीताजीके समीप ले गया तो निस्संदेह मेरा मरण हो जायगा ॥ ६९-७० ॥

एवं ब्रुवाणे वीरे तु प्राप्तो रणगतो लवः।
जग्राह वानरौ तौ हि मुदा कपटमूर्च्छितौ ॥ ७१ ॥

वीरवर हनुमान् ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय रणभूमिमें घूमता हुआ लव वहाँ आ पहुँचा और बड़ी प्रसन्नताके साथ उसने कपटपूर्वक मूर्च्छित हुए उन दोनों वानरोंको पकड़ लिया ॥ ७१ ॥

सीतासमीपं गत्वाथ सर्वं जगदतुश्च तौ।
जितो रामः ससैन्यो हि समानीतं च भूषणम् ॥ ७२ ॥
वानरौ कौतुकार्थं ते मयाऽऽनीतौ निरीक्षय।
मातर्भ्रात्रा कृतं युद्धं विजयी पुनरागतः ॥ ७३ ॥
सीता पुत्रौ परिष्वज्य वचनं चेदमब्रवीत्।

तत्पश्चात् वे दोनों सीताजीके निकट जाकर युद्धके सारे वृत्तान्तका वर्णन करने लगे—'माँ! हमने सेनासहित श्रीरामको जीत लिया है और उनके आभूषण भी उतार लिये हैं तथा तुम्हें तमाशा दिखानेके लिये मैं दो बंदरोंको भी पकड़ लाया हूँ। चलो देखो न। भाई कुशने घोर युद्ध किया था और अब वे विजयी होकर पुनः लौटे हैं।' तब सीता पुत्रोंको छातीसे लगाकर निम्नाङ्कित वचन बोलीं ॥ ७२-७३½ ॥

सीतोवाच

मानिनौ वानरौ मुञ्च रणमध्ये च पुत्रक ॥ ७४ ॥
मां निरीक्ष्य मृतावेतौ जीवहीनौ भविष्यतः।
ततो लवो मुमोचैतौ रणमध्ये महामतिः ॥ ७५ ॥

सीताने कहा—अरे बेटा! तू इन दोनों मानी वानरोंको रणभूमिमें ही छोड़ आ, नहीं तो ये दोनों मुझे देख निर्जीव होकर मर जायँगे। तब महाबुद्धिमान् लवने उन दोनोंको रणक्षेत्रमें लाकर छोड़ दिया ॥ ७४-७५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे राजन् वाल्मीकिर्वरुणालयात्।
आजगाम महातेजा ऋषिभिः परिवारितः ॥ ७६ ॥

राजन्! इसी बीचमें महातेजस्वी महर्षि वाल्मीकि ऋषियोंके साथ वरुणलोकसे लौटकर आ गये ॥ ७६ ॥

तौ गत्वाथाकथयतां सर्वं कृत्यमशेषतः।
ततो ज्ञात्वा मुनिवरः सर्वानुत्थाप्य वारिणा ॥ ७७ ॥
प्रोक्ष्यामृतमयेनैवमुवाच रघुनन्दनम्।

तब कुश और लवने महर्षिके समीप जाकर सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों उनसे कह सुनाया। सारी घटना जानकर मुनिवर वाल्मीकिने अमृतमय जलसे सींचकर उन समस्त मृत योद्धाओंको उठाया और फिर रघुनन्दनसे इस प्रकार कहा ॥ ७७½ ॥

वाल्मीकिरुवाच

तव पुत्रौ महाराज गृह्यतां रघुनन्दन ॥ ७८ ॥
मन्यसे यदि सीतां च निर्दोषां नेतुमर्हसि।

वाल्मीकिजी बोले—महाराज! ये दोनों आपके पुत्र हैं। रघुनन्दन! इन्हें ग्रहण कीजिये और यदि आप सीताको निर्दोष मानते हों तो उसे भी ले जा सकते हैं ॥ ७८½ ॥

उत्थाय रामो नगरीं प्रविवेश ससैनिकः ॥ ७९ ॥
विस्मयन्नेव च हयं मुक्तं वाल्मीकिना च तम्।
पालयामास वीरैस्तैःपश्चाद् यज्ञो महान् कृतः ॥ ८० ॥

तब श्रीराम विस्मय-विमुग्ध हो उठकर वहाँसे चल दिये और सैनिकोंसहित अपनी नगरीमें प्रविष्ट हुए। इधर शेष वीर महर्षि वाल्मीकिद्वारा बन्धनमुक्त किये गये उस अश्वकी रक्षा करने लगे। तत्पश्चात् श्रीरामने उस महान् यज्ञको सम्पन्न किया॥

यज्ञोत्सवे वर्तमाने वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवः।
सीतां नीत्वा पुत्रयुतां संस्थाप्य रघुसंनिधौ ॥ ८१ ॥

जिस समय वह यज्ञोत्सव चालू हुआ उसी समय मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिने पुत्रोंसहित सीताको लाकर रघुनाथजीके समीप खड़ी कर दिया ॥ ८१ ॥

रामः पुत्रयुतो जातः सीतया सहितः स्थितः।
मुनीन् विसर्जयामास यज्ञान्ते च पुरस्कृतान् ॥८२॥

तब श्रीराम पुत्रोंसे संयुक्त हुए और सीताके साथ विराजमान होकर उन्होंने यज्ञान्तमें मुनियोंको दक्षिणादिसे पुरस्कृत करके विदा किया ॥ ८२ ॥

रामः सीतागतं स्नेहं विदधे तदपत्ययोः।
युद्धं तु पुत्रयोर्यद्वज्जातं रामेण वै पुरा ॥ ८३ ॥
तथा पार्थस्य पुत्रस्य युद्धं प्रावर्तताद्भुतम्।

श्रीरामका जैसा स्नेह सीताके प्रति था, वैसा ही प्रेम वे दोनों पुत्रोंसे करने लगे। पूर्वकालमें जैसे श्रीरामके साथ उनके पुत्रोंका युद्ध हुआ था, उसी प्रकार अर्जुनका और उनके पुत्र बभ्रुवाहनका अद्भुत युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ ८३½ ॥

सूत उवाच

पारीक्षिताय सकलं कथयामास जैमिनिः ॥ ८४ ॥
तत् तु युष्मभ्यमाख्यातं मया वै मुनिपुङ्गवाः ।

सूतजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठो ! महर्षि जैमिनिने परीक्षित्-नन्दन जनमेजयसे जिस कथाका वर्णन किया था, वही सारा-का-सारा वृत्तान्त मैंने आपलोगोंसे कह सुनाया है ॥ ८४½ ॥

नाख्यातवानिदं युद्धं वाल्मीकिः पितृपुत्रयोः ॥ ८५ ॥
यद्याख्यास्यदमज्जिष्यल्लोकोऽयं करुणार्णवे ।

वाल्मीकि मुनिने (अपनी रामायणमें) पिता-पुत्रके इस युद्धका वर्णन नहीं किया है । यदि वे इसका वर्णन करते तो यह संसार करुणाके समुद्रमें डूब जाता ॥ ८५½ ॥

इदमाख्यानकं रम्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ ८६ ॥
ते पुत्रपौत्रसहिता भुक्त्वा भोगान् मनोरमान् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता लभन्ते विष्णुमव्ययम् ॥ ८७ ॥

जो नरश्रेष्ठ इस मनोहर आख्यानका श्रवण करते हैं, वे इस संसारमें पुत्र-पौत्रोंसे सम्पन्न होकर मनोरम भोगोंका भोग करते हैं और अन्तमें समस्त पापोंसे छूटकर अविनाशी विष्णु-पदको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८६-८७ ॥

शृणोतीदं पुण्यशीलं श्रावयेच्चेदमुत्तमम् ।
नरः फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य इस उत्तम इतिहासको स्वयं सुनता है अथवा किसी पुण्यात्माको सुनाता है, उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है ॥ ८८ ॥

काञ्चनेन विमानेन स्वर्गं याति नरोत्तमः ।
पुनर्लक्ष्मीरूपयुतो जायते विमले कुले ॥ ८९ ॥

वह नरश्रेष्ठ स्वर्णनिर्मित विमानमें बैठकर स्वर्गलोकमें जाता है और पुनः (पुण्य क्षीण होनेपर) सुन्दर रूप तथा लक्ष्मीसे संयुक्त होकर किसी निर्मल कुलमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ८९ ॥

श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते ।
पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव ॥ ९० ॥

जैसे कोकिलकी मीठी बोली सुननेके बाद कौएकी रूखी (काँव-काँव) वाणी अच्छी नहीं लगती, उसी तरह इस उपाख्यानके सुन लेनेपर दूसरी कथा सुननेकी रुचि नहीं होती ॥ ९० ॥

इति जैमिनीयाश्वमेधपर्वणि कुशलवोपाख्याने रामाश्वमेधपरिसमाप्तौ फलस्तुतिवर्णनकथनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

इस प्रकार जैमिनीयाश्वमेधपर्वमें कुशलवोपाख्यानके प्रसंगमें श्रीरामके अश्वमेधकी परिसमाप्तिमें फलस्तुतिका वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

बभ्रुवाहन और हंसध्वजके युद्धमें हंसध्वजका पतन, सुवेग और बभ्रुवाहनका भयंकर युद्ध और सुवेगकी मृत्यु, बभ्रुवाहन और वृषकेतुका अद्भुत युद्ध, जिसमें बभ्रुवाहनकी विजय और उसके द्वारा वृषकेतुका वध

जैमिनिरुवाच

हंसध्वजेन तुमुलं कृतं युद्धं नराधिप ।
स बाणैर्बभ्रुवाहस्य छित्त्वा रथसहस्रकम् ॥ १ ॥
सरथं पातयित्वाग्रे बिभेदास्य वपुः शरैः ।
अस्त्राणि पार्थपुत्रस्य विफलानि कृतानि वै ॥ २ ॥

जैमिनिजी कहते हैं—नरेश्वर जनमेजय ! उस समय राजा हंसध्वजने बड़ा भयंकर युद्ध किया । उन्होंने बाणोंकी मारसे बभ्रुवाहनके एक सहस्र रथोंको तोड़-फोड़ डाला तथा अर्जुनकुमारके सभी आयुधोंको निष्फल करके उसे सामने ही रथसहित पृथ्वीपर गिराकर उसके शरीरको बाणोंसे विदीर्ण कर दिया ॥ १-२ ॥

अक्षौहिणीपञ्चकं तु विजितं जनमेजय ।
स्मृत्वा कृष्णस्य वचनं पुत्रयोः पतनं मृधे ॥ ३ ॥

जनमेजय ! युद्धस्थलमें अपने दोनों पुत्रों (सुधन्वा और सुरथ) के मरणका तथा श्रीकृष्णकी बातोंका स्मरण करके हंसध्वजने बभ्रुवाहनकी पाँच अक्षौहिणी सेनाको परास्त कर दिया ॥ ३ ॥

बभ्रुवाहस्तु पार्थाय बाणं च परिमुञ्चति ।
तेन वीरसहस्राणां बलं भवति पातितम् ॥ ४ ॥